उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत

उठो जागो और लक्ष्य प्राप्त किए बिना विश्राम मत लो

विवेक शिखा

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा का एकमात्र हिन्दी मासिकी

वर्ष—२ मई, १९८३ अंक—५

इष्टदेव का हृदय-कमल में रूप अनूप दिखा। निजानन्द में रखती अविचल विमल 'विवेक शिखा'॥

संपादक

डॉ० केदारनाथ लाभ

संपादकीय कार्यालय :

रामकृष्ण निलयम्

जयप्रकाश नगर,

छपरा—८४१३०१

(बिहार)

सहयोग राशि

षड् वार्षिक	१०० रु०
त्रैवार्षिक	५५ रु०
वार्षिक	२० रु०
एक प्रति	२ रु०

रचनाएँ एवं सहयोग-राशि संपादकीय कार्यालय के पते पर ही भेजने की कृपा करें।

श्री रामकृष्ण ने कहा है

(१)

किसी भी रीति से क्यों न हो यदि कोई अमृत के कुण्ड में एक बार गिर पड़े, तो अमर हो जाता है। यदि कोई स्तव-स्तुति करके गिरे, तो वह भी अमर हो जाता है और यदि किसी को किसी तरह अमृतकुण्ड में ढकेलकर गिरा दिया जाय, तो वह भी अमर हो जाता है। इसी प्रकार, जाने-अनजाने या भ्रम से अथवा और किसी प्रकार से श्रीभगवान का नाम क्यों न लिया जाय, उसका फल अवश्य होगा।

(२)

ताली बजाकर प्रातःकाल और सायंकाल हरिनाम भजा करो, ऐसा करने से सब पाप दूर हो जायेंगे। जैसे पेड़ के नीचे खड़े होकर ताली बजाने से पेड़ पर की सब चिड़ियाँ उड़ जाती हैं, वैसे ही ताली बजाकर हरिनाम लेने से देहरूपी वृक्ष पर से सब अविद्या-रूपी चिड़ियाँ उड़कर भाग जाती हैं।

(३)

समुद्र में एक प्रकार की सीप होती है, वह हमेशा मुँह खोलकर जल पर तैरती रहती है, परन्तु स्वाति नक्षत्र का एक बूँद जल मुँह में पड़ते ही वह अपना मुँह बन्द कर तुरन्त नीचे चली जाती है; फिर ऊपर नहीं आती। इसी प्रकार जिज्ञासु विश्वासी साधक भी गुरु-मन्त्र रूपी एक बूँद जल पाकर साधना के अथाह जल में एकदम डूब जाते हैं, फिर वे नहीं भटकते।

(४)

जो तालाब छिछला है, उसका पानी पीना हो तो ऊपर से धीरे-धीरे ले लेना चाहिए। अधिक खलबलाने से नीचे का कीचड़ ऊपर उठकर सारे पानी को मैला कर देता है। यदि सच्चिदानन्द का लाभ करना चाहते हो, तो गुरु के उपदेश में विश्वास करके धीरे-धीरे साधना करो। व्यर्थ में केवल शास्त्र-विचार अथवा तर्क-वितर्क करने से यह छिछला मन मैला हो जायगा।

वैदिक प्रार्थना

(मधुमती सूक्तम्)

मधु वाता ऋतायते, मधु क्षरन्ति सिन्धवः ।
माध्वीर्नः सन्तु ओषधीः ।
मधु नक्तम् उतोषसि ॥

मधुमत् पार्थिवं रजः ।
मधु औरस्तु नः पिता ॥

मधुमान् नो वनस्पतिः ।
मधुमान् अस्तु सूर्यः ॥

माध्वीर्गावो भवन्तु नः ।
ॐ मधु ॐ मधु ॐ मधु ॥

मधुमय होकर बहे सदा यह सुन्दर सुखद समीर ।
मधुमय बने बहे धरणी पर शीतल सरिता-नीर ॥

ओषधियाँ सब मधुमय होवें, हरें दुःखद जन पीर ।
रैन दिवस मधुमय हो जावें, मधुमय हो रवि धीर ॥

भूतल के कण-कण में छाये मधुमय स्वर गम्भीर ।
पूर्ण वनस्पति मधुमय होवें, हरें हमारी पीर ॥

गायें अपना मधु बरसावें, सदा हमारे तीर ।
मधु से पूर्ण चराचर होवे, मधुमय जगत्-शरीर ॥
ॐ मधु ॐ मधु ॐ मधु ।

सम्पादकीय सम्बोधन

लय भंग न हो, टूटे न ताल

मेरे आत्मस्वरूप मित्रो,

कई मित्र जब-तब अपनी साधना में उत्पन्न होनेवाली बाधाओं के सम्बन्ध में चर्चा करते हुए कहा करते हैं—"क्या पूछते हैं, परिवार और जिन्दगी की समस्याएँ इतनी पेचीदी और जटिल है कि जबतक इन समस्याओं का समाधान नहीं हो जाता, तबतक कुछ और करना कठिन लगता है। साधन-भजन में मन लगता नहीं। ध्यान जमता नहीं। धारणा हो नहीं पाती। समाधि तो दूर की बात है। लगता है, इस जीवन में कुछ हो नहीं सकेगा। एक गहन-गम्भीर निराशा ने पूरे जीवन को घेर लिया है। अब आप ही बतावें, हम क्या करें ?"

इन मित्रों की जिज्ञासाओं में गम्भीरता और सच्चाई होती है। यह सही है कि जिन्दगी की समस्याएँ बेहद पेचीदी, ऊबाऊ और जटिल होती हैं। जीवन में सब कुछ अनुकूल ही नहीं होते। और अनुकूलता में हमें सुख मिलता है, इसलिए प्रतिकूलता का दुःख भोगने को भी हम अभिशप्त हैं। जबतक पत्नी नहीं मिली थी, मन बेचैन था। पत्नी मिलीं, तो उनके व्यवहार से मन खिन्न होने लगा। बच्चे नहीं हुए, तो जीवन फीका लगता था। हुए, तो नयी समस्याओं ने दबोच लिया। उनकी शिक्षा-दीक्षा, शील-संयम, शादी-ब्याह और नौकरी की समस्याएँ। और जब अपना बुढ़ापा आ गया तब बेटों और बहुओं से मिली उपेक्षा, तिरस्कार या अवमानना से उत्पन्न समस्या। कोई अन्त है जीवन की समस्याओं का ? मुझे तो हर संसारी प्राणी 'पीड़ा का राजकुमार' और दुःख-दर्द की अतःसलिला नदी-जैसा दीख पड़ता है। जो बाहर से भरा-पूरा, हँसता-खिलखिलाता और ठहाके-कहकहे लगाता मिलता है उसकी जीवन-भूमि को थोड़ा कुरेदते ही, तुरत पीड़ा की—एक अकथ-असीम पीड़ा की—कोई तप्त जलधारा फूट पड़ती है। मन में करुणा भर आती है। प्रभु ! कितनी ज्वाला है फूल से सुन्दर-सुकुमार सुरभित दिखने वाले जगत के इन प्राणियों के भीतर ! कृपा करो, नाथ ! दया करो, करुणाकर ! इनमें छिपे आनन्द की अमृत-धारा की लहर उठा दो। ताकि ये जान लें अपने स्वरूप को, और मुक्त हो जायँ जगज्ज्वाला की जलन से और प्रतिष्ठित हो जायँ आनन्द, परमानन्द के शाश्वत-चिरन्तन कैलास शिखर पर। हमारी जीवन-यात्रा समस्याओं से निपटने में ही समाप्त हो जाती है—'चलते-चलते शाम हो गयी, यूँ ही उमर तमाम हो गयी।"

समस्याओं की विभीषिका से मन का विचलित होना भी स्वाभाविक है। और मन जबतक चंचल-चपल कुरंग की भाँति चौकड़ियाँ लगाता रहेगा, अनुकूलता और प्रतिकूलता के झंझावात में सूखे पत्ते की भाँति उठता-गिरता रहेगा, अपनापन और परायापन के द्वन्द्व में झटके खाता रहेगा, कामिनी और कांचन अर्थात् भोग और वासना की उठती लहरों में गोते लगाता रहेगा, तबतक आनन्द की केवल कल्पना होगी, आनन्द नहीं मिलेगा, आज की प्लास्टिक पैकेट की संस्कृति में सुखों के प्लास्टिक पुष्प मिलेंगे, आत्म-तृप्ति की कोई सुगन्ध नहीं मिलेगी, जीवन के मंच पर दुःखों के भूत-प्रेत नाचते रहेंगे, किन्तु उस पर आत्मानन्द के शिव-पार्वती का लास्य नहीं होगा, मन के वन में ताप और अनुताप की बाँसुरी बजती रहेगी, उन्मुक्त उल्लास और निश्छल हास के कृष्ण का वहाँ कोई महारास नहीं अवतरित होगा।

जीवन की सारी समस्याओं का समाधान हो जाय, तभी हम निश्चित मन से अलौकिक दिव्य आनन्द के संधान में लगेंगे—यह सोचना वैसा ही है जैसे सागर के तट पर खड़ा कोई व्यक्ति यह सोचे कि जरा लहरें थम जायँ तब स्नान किया जायगा। यह मूर्खता है, आत्म प्रवंचना है। सागर में नहाना है तो लहरों के बीच ही

उतरना होगा सागर में और तन-मन को शीतल कर निकलना होगा उस सागर से। कल के लिए रुकना नहीं होगा। आज और अभी सागर में उतर जाना होगा।

युवैव धर्मशीलः स्यात् अनित्यं खलु जीवितम्
को हि जानाति कस्माद्य मृत्युकालो भविष्यति ॥
(योग वाशिष्ठ)

अर्थात् 'जीवन अनित्य है, क्षण भंगुर है, इसलिए इस युवा काल में ही धर्मशील बनो। कौन जानता है कि आज किसकी मृत्यु होने वाली है!'

तो जीवन की अनन्त बाधाओं, बिघ्नों और समस्याओं के बीच ही हमें जीवन के मूल-भूत रस को प्राप्त करने के लिए जोर-शोर से, पूरी तत्परता और निष्ठा से लग जाना होगा।

यह सच है कि हमें पत्नी है, बच्चे हैं, घड़-संसार है और इनके कारण अनेक समस्याएँ भी हैं जिनके समाधान के लिए हम रात-दिन परेशान है। लेकिन यह भी उतना ही बड़ा सच है कि हम अपने अहंकार के कारण ही यह सोचते हैं कि सभी समस्याओं का समाधान हमें ही करना है। और जब तक अहंकार है, ध्यान जम नहीं सकता। ध्यान तो अहंकार का विसर्जन ही हैं। अहंकार का गल जाना ही जीवन में ध्यान का घटित हो जाना है। इसका यह अर्थ नहीं है कि हम अपनी पत्नी और बच्चों से विमुख हो जायँ। नहीं, उनकी देख-रेख हमें करनी होगी। बल्कि पूरी निष्ठा से करनी होगी। लेकिन संसार की सेवा का एक विलक्षण वेद है, एक रोचक रहस्य है, एक विमोहक विज्ञान है। उसे जान लेने पर फिर कोई बाधा नहीं रहती। क्या है वह विज्ञान? स्वामी विवेकानन्द ने समझाया है—"मेरे गुरुदेव कहा करते थे, 'अपने बच्चों के प्रति वही भावना रखो, जो एक धाय की होती है।' वह तुम्हारे बच्चे को गोद में लेती है, उसे खिलाती है और उसको इस प्रकार प्यार करती है, मानो वह उसी का बच्चा हो। पर ज्यों ही तुम उसे काम से अलग कर देते हो, त्यों ही वह अपना बोरा-बिस्तर समेट तुरन्त घर छोड़ने को तैयार हो जाती है। उन बच्चों के प्रति उसका जो इतना प्रेम था, उसे वह बिल्कुल भूल जाती है। एक साधारण धाय को तुम्हारे बच्चों को छोड़कर दूसरे के बच्चों को लेने में तनिक भी दुःख न होगा। तुम भी अपने बच्चों के प्रति यही भाव धारण करो। तुम्हीं उनकी धाय हो,—और यदि तुम्हारा ईश्वर में विश्वास है, तो विश्वास करो कि ये सब चीजें, जिन्हें तुम अपनी समझते हो, वास्तव में ईश्वर की हैं।"

स्वामी जी ने आगे कहा है—"यह सोचना कि मेरे ऊपर कोई निर्भर है तथा मैं किसी का भला कर सकता हूँ, अत्यन्त दुर्बलता का चिह्न है। यह अहंकार ही समस्त आशक्ति की जड़ है, और इस आशक्ति से ही समस्त दुःखों की उत्पत्ति होती है। हमें अपने मन को यह भली-भाँति समझा देना चाहिए कि इस संसार में हमारे ऊपर कोई भी निर्भर नहीं है। एक भिखारी भी हमारे दान पर निर्भर नहीं। किसी भी जीव को हमारी दया की आवश्यकता नहीं, संसार का कोई भी प्राणी हमारी सहायता का भूखा नहीं। सबकी सहायता प्रकृति से होती है। यदि हममें से लाखों लोग न भी रहें, तो भी उन्हें सहायता मिलती रहेगी। तुम्हारे हमारे न रहने से प्रकृति के द्वार बन्द न हो जायेंगे। दूसरों की सहायता करके हम जो स्वयं शिक्षा लाभ कर सक रहे हैं, यही तो हमारे तुम्हारे लिए परम सौभाग्य की बात है। जीवन में सीखने योग्य यही सबसे बड़ी बात है। जब हम पूर्ण रूप से इसे सीख लेंगे, तो हम फिर कभी दुःखी न होंगे; तब हम समाज में कहीं भी जाकर उठ-बैठ सकते हैं, इससे हमारी कोई हानि न होगी। तुम्हारे चाहे पति हो; चाहे पत्नियाँ हों, तुम्हारे दल के दल नौकर हों, बड़ा भारी राज्य हो पर यदि तुम इस तत्त्व को हृदय में रखकर कार्य करते हो कि यह संसार मेरे भोग के लिए नहीं है और इसे मेरी सहायता की किंचित आवश्यकता नहीं, तो यह सब रहने पर भी तुम्हारी कोई हानि नहीं होगी।"[1]

स्पष्ट है कि समस्याएँ रहेंगी ही। लेकिन समस्याओं के बीच ही ईश्वर प्राप्ति के लिए साधन-भजन करने हैं,

1. विवेकानन्द साहित्य : तृतीय खण्ड, अद्वैत आश्रम, कलकत्ता—पृ० ६३-६४.

ध्यान करना है। और इसके लिए अनासक्ति का भाव पहले हृदय में लाना होगा और फिर अभ्यास—निरन्तर अभ्यास करते रहना होगा, मन को एकाग्र करने के लिए। कृष्ण ने अर्जुन से मन को वशीभूत करने के उपाय के रूप में कहा—'अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते।' कि हे अर्जुन, अभ्यास और वैराग्य से मन को वश में किया जा सकता है।

किन्तु, प्रश्न है कि अभ्यास कैसे करें? मन को नियंत्रित कर ध्यान में कैसे प्रवेश किया जाय? मुख्य रूप से यह ध्यान राजयोग का विषय है। ध्यान में निश्चय ही हठात् हमारा प्रवेश नहीं हो जाता। ध्यान के पूर्व कुछ भूमिकाएँ हैं। अक्सर हम उन पर ध्यान नहीं देते और सीधे ध्यान के लिए बैठ जाते हैं। और जब ध्यान नहीं जमता तो शिकायत करते हैं कि यह हमारे वश का रोग नहीं। बिना वर्णमाला का अभ्यास किये क्या हम सीधे पुस्तक पढ़ सकते हैं? ध्यान के ग्रंथ में प्रवेश के लिए भी पहले वर्णमाला सीखनी होगी। क्या है वह वर्णमाला?

राजयोग के आठ अंग हैं—यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि। ध्यान सातवें सोपान पर है। इसके पूर्व छः स्थितियाँ हैं जिनपर प्रायः हम ठीक से ध्यान नहीं दिया करते।

अहिंसा, सत्य, अस्तेय (चोरी नहीं करना), ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह—ये पाँच यम हैं।

शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय (धर्मशास्त्रों का पठन-पाठन) और ईश्वर प्रणिधान (ईश्वर के प्रति आत्मार्पण) —ये पाँच नियम हैं।

ये यम-नियम ध्यान की आधार भूमि हैं—नींव हैं। इनकी ओर हमें ध्यान देना चाहिए और इनका पालन करना चाहिए। ये वर्णमालाएँ हैं—ध्यान-ग्रंथ की।

किसी एक आसन को सिद्ध कर लेना चाहिए। जिसमें हम देर तक सुख-पूर्वक बैठ सकें—शिर, ग्रीवा और मेरु-दण्ड को सीधा रखकर—वही आसन है।

फिर ४—५ बार प्राणायाम के द्वारा नाड़ी शोधन कर लें।

इन्द्रियों को बहिर्मुखता से हटाकर भीतर समेट लेना प्रत्याहार है।

फिर धारणा—अपने ईष्ट देव की—करनी चाहिए। और तब गुरु द्वारा बताये हुए तरीके से आज्ञा या अनाहत चक्र पर ध्यान करना चाहिए।

योग को चित्त-वृत्तियों का निरोध कहा गया है। वृत्तियाँ क्या हैं! वृत्ति तीन प्रकार की होती हैं- शान्त वृत्ति, घोर वृत्ति और मूढ़ वृत्ति।

जब मन सत्व गुणों से युक्त रहता है तब शान्त वृत्ति जगती है। जप, ध्यान और शास्त्रों के अध्ययन में रुचि उत्पन्न होना शान्त वृत्ति का लक्षण है।

रजो गुण की प्रबलता से मन में घोर वृत्ति और तमोगुण की प्रबलता से मूढ़ वृत्ति जगती है।

जब मन की इन वृत्तियों को हम एकोन्मुख करते हैं—ईश्वरोन्मुख करते हैं—तब हमारी एकाग्रता बढ़ती है और हम निज स्वरूप में प्रतिष्ठित हो जाते हैं।

राज योग में वृत्तियाँ दो प्रकार की कही गयी हैं—क्लिष्ट वृत्ति और अक्लिष्ट वृत्ति। क्लिष्ट वृत्ति के पाँच भेद हैं—अविद्या, अस्मिता, राग (प्रेम), द्वेष, और अभिनिवेश (जीवन से प्रेम और मृत्यु से भय)।

अक्लिष्ट वृत्ति के भी पाँच भेद हैं—प्रमाण (सम्यक् ज्ञान), विपर्यय (अशुद्ध ज्ञान), विकल्प, निद्रा और स्मृति।

हमें वृत्तियों से अपने को नहीं युक्त करना चाहिए। साक्षी भाव से वृत्तियों का हम अवलोकन करते रहें। तटस्थ रहें उनसे। इस प्रकार वृत्तियों से असम्पृक्त रह कर आत्मज्ञान प्राप्त किया जा सकता है।

जब केवल एक वृत्ति—ईश्वर की वृत्ति रहती है तब सविकल्प समाधि होती है और जब कोई वृत्ति नहीं बचती तब निर्विकल्प समाधि होती है। ध्यान की यह चूड़ान्त अवस्था है।

तो हमें पहले अपनी वृत्तियों का नियमन करना होगा। उसकी कला सीखनी होगी, उसका विज्ञान जानना होगा।

श्री रामकृष्ण कहा करते थे—"ध्यान करो—मन में, वन में, या घर के कोने में।' वे कहते थे—'एकान्त में गये बिना कठिन बीमारी कैसे अच्छी होगी? बीमारी तो है सन्निपात की, और जिस कमरे में वह रोगी है, उसी कमरे में इमली का अचार और जल का कुण्डा है! पुरुष

के लिए स्त्री इमली का अचार है और भोग-वासना है जल का कुण्डा। इससे बीमारी कैसे अच्छी होगी ? (बीमारी की अवस्था तक जैसे रोगी को बदपरहेज से दूर रहना पड़ता है, वैसे ही) कुछ दिन निवास-स्थान से कहीं दूर एकान्त में जाकर साधन-भजन करना चाहिए। तदन्तर नीरोग होकर लौटकर और फिर घर में रहने से भी कोई डर नहीं।"

एकान्त में अभ्यास करने की आवश्यकता श्रीरामकृष्ण ने बार-बार दुहराई है। वे कहते हैं—प्रथम अवस्था में थोड़ा एकान्त में बैठकर मन को स्थिर करना चाहिए नहीं तो इधर-उधर बहुत कुछ देख-सुनकर मन चंचल हो जाता है। दूध को यदि पानी में मिलाओ, तो वह पानी में बिल्कुल मिल जाता है, परन्तु दूध को एकान्त में जमाकर, दही बनाकर, उसे मथकर यदि मक्खन निकाल लिया जाय, तो फिर वह पानी के साथ नहीं मिलता, पानी के ऊपर तैरता रहता है। इसी प्रकार जिनका मन स्थिर हो चुका है, वे कहीं भी बैठकर सदा ईश्वर का चिन्तन कर सकते हैं।"[2]

स्वामी विवेकानन्द ने अपने एक प्रिय शिष्य को ध्यान करने की कुछ रोचक प्रक्रियाएँ बतायी थीं। मैं उन्हें आपके सम्मुख दुहराना चाहूँगा। उन्होंने कहा था—"प्रतिदिन अकेले ध्यान करना; सब रहस्य स्वयं ही खुल जायगा। विद्यारूपिणी महामाया भीतर सो रही है; इसलिए कुछ जान नहीं सक रहा है। यह कुण्डलिनी ही है वह शक्ति। ध्यान करने के पूर्व जब नाड़ी शुद्ध करेगा, (रेचक-पूरक प्राणायाम द्वार नाड़ी-शुद्धि की जाती है।--सं०) तब मनही मन मूलाधार स्थित कुण्डलिनी पर जोर-जोर से आघात करना और कहना, 'जागो माँ ! जागो माँ !' धीरे-धीरे इन सब का अभ्यास करना होगा। भाव-प्रवणता को ध्यान के समय एकदम दबा देना, उसमें बड़ा भय है। जो लोग अधिक भाव प्रवण हैं, उनकी कुण्डलिनी फड़फड़ाती हुई ऊपर तो उठ जाती है, परन्तु वह जितने शीघ्र ऊपर जाती है, उतने ही शीघ्र नीचे भी उतर आती है। जब उतरती है तो साधक को एकदम गर्त में ले जाकर छोड़ती है। भाव-साधना के सहायक कीर्तन आदि में यही एक बड़ा दोष है"[3]

ध्यान-साधना के रहस्य की ये बातें शास्त्रों में स्पष्ट नहीं मिलतीं। कोई महागुरु ही इन बातों को अपने शिष्यों के सामने करुणा पूर्वक खोलकर रख देता है। स्वामीजी ने अपने उक्त शिष्य से स्वयं कहा था—'सभी साधन-रहस्य क्या शास्त्र में हैं ? वे सब गुरु-शिष्य परम्परा से गुप्त भाव से चले आ रहे हैं। खूब सावधानी के साथ ध्यान करना, सामने सुगन्धित फूल रखना, धूप जलाना। जिससे मन पवित्र हो, पहले पहल वही करना। गुरु-इष्ट का नाम करते-करते कहा कर 'जीव-जगत सभी का मंगल हो।' उत्तर, दक्षिण, पूर्व, पश्चिम, उर्ध्व, अधः सभी दिशाओं में शुभ संकल्प की चिन्ताओं को बिखेरकर ध्यान में बैठाकर। ऐसा पहले पहल करना चाहिए। उसके बाद स्थिर होकर बैठकर (किसी भी ओर मुँह करके बैठने से कार्य हो सकता है)……ध्यान किया कर। एक दिन भी क्रम न तोड़ना। काम-काज की झंझट रहे तो कम से कम पन्द्रह मिनट तो अवश्य ही कर लेना। एकनिष्ठा न रहने से कुछ नहीं होगा।"[4]

अतएव, ध्यान में मन नहीं लगता हो, ध्यान नहीं जमता हो, तो घबड़ाने की जरूरत नहीं है। आप आत्म परीक्षण करने लगें उस घड़ी। आप टटोलने लगें अपने को, अपने मन को। क्या ध्यान की आपकी तैयारी पूरी हो चुकी है ? क्या आपने शक्तियों को समेटने के लिए यम-नियम का पालन शुरू कर दिया है ? क्या अहिंसा, सत्य आदि में आप स्थित हो चुके हैं ? क्या अहंकार-शून्यता, अनासक्ति, करुणा, क्षमा, प्रेम और अक्रोध के प्रदेश की आपने यात्रा शुरू कर दी है ?

आप समझ लें, अहिंसा महान् दैवी गुण है। 'अहिंसा परमो धर्मः' कहा गया है। मन, वाणी और कर्म से किसी को भी आहत नहीं करना ही अहिंसा है। हमें

2. भगवान रामकृष्ण : धर्म तथा संघ : रामकृष्ण मठ, नागपुर पृ० ४९

3. विवेकानन्दजी के संग में : श्री शरच्चन्द्र चक्रवर्ती : श्रीरामकृष्ण आश्रम, नागपुर : पृ० ३६३.

4. वही पृ० ३६४

अपने मन में किसी ऐसी विचार-तरंग को ही नहीं उठने देना है जो दूसरों के लिए पीड़ादायक हो। हमें अपनी वाणी को ही इस प्रकार संयमित करना होगा कि उसके प्रयोग से किसी के मर्म पर चोट न लगे। भगवान बुद्ध ने इसी से सम्यक् वचन पर जोर दिया है।

हमारे मुँह से निकलने वाला हर शब्द एक स्तुति हो, एक स्तवन हो, एक प्रार्थना हो, एक वंदना हो, एक ऋचा हो, एक मंत्र हो।

वह वाणी क्या, जिसमें वंदना की विनम्रता न हो !
वह वाणी क्या, जिसमें प्रार्थना की निरहंकारिता और समर्पिति न हो !
वह वाणी क्या, जिसमें सत्य की मंत्रात्मक मर्यादा न हो !
वह वाणी क्या, जिसमें मैत्री, मुदिता और करुणा की गंगोत्री नहीं फूट रही हो !
वह वाणी क्या, जिसमें हमारे व्यक्तित्व की शिवता और भद्रता एक चारुता की ऋचा बनकर नृत्य न कर रही हो !

वाणी ईश्वर के द्वारा मनुष्य को दी गयी एक महत्तम विभूति है। आकाश को विस्तार है, वाणी नहीं। पर्वत को उच्चता है, वाणी नहीं। पृथ्वी को गुरुता है, वाणी नहीं। सागर को गहराई है, वाणी नहीं। पुष्पों को सुगन्ध है, सुन्दरता है, सुकुमारता है, वाणी नहीं। ओह, वाणी हमारी दैवी सम्पदा है। इसका प्रयोग हमें बड़ी सावधानी से करना ही चाहिए।

इसी प्रकार मन, वचन और कर्म से हमें सत्य में प्रतिष्ठित होना ही पड़ेगा। श्री रामकृष्ण देव सत्य को कलियुग की तपस्या कहा करते थे। हमें सत्य में स्थित होना है। हमें सत्य को प्राप्त करना है। ब्रह्म सत्य है। ब्रह्म सत्य को सत्य की साधना से हमें जानना होगा। 'सत्यमेव जयते नानृतम्।' तीनों कालों में एक मात्र सत्य ही सुरक्षित रहता है। इसलिए अहिंसा और सत्य योग की नींव हैं।

फिर अन्तर-बाह्य शुचिता, संतोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान, जो नियम हैं, इनके द्वारा अपने अन्तर-बाह्य जीवन को आध्यात्मिक बना लेना होगा।

हम मन्दिर में स्नान किये बिना नहीं जाते। हमें ध्यान-मंदिर में जाने के पूर्व यम-नियम आदि के सुधा सरोवर में ठीक से निमज्जित हो जाना पड़ेगा। और तब ध्यान स्वतः घटित होगा।

एक बात समझ लें।

ध्यान कोई क्रिया नहीं है; यह एक आत्मिक आध्यात्मिक घटना है।

ध्यान किया नहीं जाता, ध्यान हो जाता है।

धरती, हवा, सूर्य और पानी से पोषक तत्त्व लेकर बीज पौधा बनने की तैयारी करता है। फूल का उसकी डाल पर खिल जाना तो एक चमत्कार है, एक घटना है।

यम-नियमादि से हम अपने आध्यात्मिक जीवन की तैयारी करते हैं, फिर ध्यान का फूल हमारे एकाग्र मन की डाल पर अचानक किसी दिन, किसी पुण्य क्षण में, किसी शुभ लग्न में, किसी महत्तम मुहूर्त में फूट पड़ता है। हम उसकी सुगंध से धन्य हो उठते हैं, उसकी खुशबू से निहाल हो उठते हैं, उसकी महिमा से मुग्ध हो जाते हैं, खो जाते हैं, आत्मस्थ हो जाते हैं।

फूल का खिल जाना पौधे का अपनी पूर्णता को पा लेना है।

ध्यान का घटित हो जाना, हमें अपने स्वरूप को, अपनी आत्मा को, अपने परमात्मा को, अपनी पूर्णता को पा लेना है।

किसी पौधे में कब फूल खिलेगा, पौधा नहीं जानता। वह केवल मिट्टी, हवा, जल और सूर्य से विभिन्न तत्त्व लेकर अपनी तैयारी में लगा रहता है।

हममें ध्यान कब घटित होगा, हम नहीं जानते। हमें तो अनासक्ति, अहंकार-हीनता, सत्य, अहिंसा, क्षमा, करुणा, मुदिता आदि के भावों से युक्त होकर मन को वृत्तियों से मुक्त करना है।

हर पौधे में फूल खिलता है—देर या सवेर।

हर साधक में ध्यान घटित होता है—कभी न कभी। हम उदास क्यों हो? हम निराश क्यों हो? हमें तो केवल पूरी निष्ठा से, पूरे पुरुषकार से, अपनी समग्रता से

उस स्थिति की केवल तैयारी करनी है जिसमें ध्यान के मन्दिर का द्वार खुलता है।

यहाँ मैं स्वामी विवेकानन्द जी की एक शिष्य साधक के प्रति दी गयी आश्वासन-वाणी दुहराना चाहूँगा। स्वामी जी ने कहा था—'कालेनात्मनि विन्दति'—समय पर अवश्य ही होगा। अन्तर इतना है कि किसी का जल्द और किसी का जरा देर में होता है। लगे रहना चाहिए, चिपके रहना चाहिए। इसी का नाम यथार्थ पुरुषाकार है। तेल की धार की तरह मन को एक ओर लगाये रखना चाहिए। जीव का मन अनेकानेक विषयों से विक्षिप्त हो रहा है, ध्यान के समय भी पहले पहल मन विक्षिप्त होता है। मन में जो चाहे क्यों न उठे, क्या भाव उठ रहे हैं, उन्हें उस समय स्थिर हो देखना चाहिए। उसी प्रकार देखते-देखते मन स्थिर हो जाता है और फिर मन में चिन्ता की तरंगें नहीं रहतीं। वह तरंग समूह ही है मन की 'संकल्पवृत्ति'। इससे पूर्व जिन विषयों का तीव्र भाव से चिन्तन किया है, उनका एक मानसिक प्रवाह रहता है, इसीलिए वे विषय ध्यान के समय मन में उठते हैं। उनका उठना या ध्यान के समय स्मरण होना ही इसका प्रमाण है कि साधक का मन धीरे-धीरे स्थिरता की ओर जा रहा है। मन कभी-कभी किसी भाव को लेकर एकवृत्तिस्थ हो जाता है—उसी का नाम है सविकल्प ध्यान। और मन जिस समय सभी वृत्तियों से शून्य हो जाता है उस ससय निराधार एक अखण्ड बोधरूपी प्रत्यक् चैतन्य में लीन हो जाता है। इसी का नाम वृत्तिशून्य निर्विकल्प समाधि है। हमने श्रीरामकृष्ण में ये दोनों समाधियाँ बार-बार देखी हैं। उन्हें ऐसी स्थितियों को कोशिश करके लाना नहीं पड़ता था बल्कि अपने आप ही एकाएक वैसा हो जाया करता था। वह एक आश्चर्यजनक घटना होती थी।"[5]

स्वामीजी की ध्यान विषयक यह आश्वस्ति-वाणी उन तमाम साधकों के लिए है जो आरंभ में ध्यान के नहीं जमने से निराश हो जाते हैं। एक कहानी सुनिए।

एक राजा था—बड़ा कृपण, महा कंजूस। एक पैसा दान देना उससे सम्भव नहीं था। उसके दरबार में एक दिन एक नर्तकी आयी। उसने राजा से दरबार में नृत्य दिखाने की अनुमति चाही। राजा ने कहा—तुम चाहो तो नृत्य कर सकती हो, लेकिन शर्त यह है कि मैं एक पैसा भी नहीं दूँगा, और न तेल-बत्ती का इन्तजाम ही करूँगा। दूसरे दर्शक तुम्हें जो दे दें, उसी से तुम्हें सन्तोष करना पड़ेगा। नर्तकी ने शर्त मंजूर कर ली।

नगर के लोगों ने रोशनी की व्यवस्था कर दी। नृत्य शुरू हुआ। वादक सितार बजाने लगा। नर्तकी के पाँव के नूपुर थिरक उठे। एक मादक लय में उसके चरण ताल देने लगे। उसके अंग-अंग के मोड़ से एक विलक्षण संगीत फूटने लगा, उसके चरणों के ताल-ताल से एक विचित्र रस-निर्झर फूटने लगा। नीचे अबीर और कुंकुम बिछे थे। उस नर्तकी के चरणों की थाप से अबीर उड़ता तो कभी हजार हजार कमल ऊपर उग आते और, कभी हजार-हजार गुलाब ऊपर लहराने लगते। अजीब सम्मोहक और हियहारी नृत्य था उस नर्तकी का। दरबार दर्शकों से खचाखच भरा था। रह रहकर लोग आनन्द और उल्लास की उमंग से भरकर तालियों की गड़गड़ाहट से वातावरण को गुंजित-अनुगुंजित कर रहे थे। राजा स्वयं उस नृत्य पर मुग्ध था। उसकी बगल में बैठा उसका पुत्र राजकुमार मस्ती में झूम-झूम उठता। ऊपर झरोखे में बैठी राजा की पुत्री इस नृत्य पर बार बार मचल रही थी। कहीं से एक साधु भी आकर नृत्य देख रहा था और नर्तकी की अंग-भंगिमाओं पर आत्म विस्मृत हो रहा था।

जाड़े की ठंढ भरी रात थी। एक पहर रात बीत गयी। किसी ने एक पैसा नहीं दिया। दो पहर रात बीत गयी। किसी ने एक अधेला नहीं दिया। और नर्तकी आत्मलीन हो विभिन्न मुद्राओं और भंगिमाओं में नाचती रही। रात का तीसरा पहर भी बीत गया। किसी ने एक पैसा भी नहीं बरसाया। जब राजा ही हाथ दबाये बैठा था तब प्रजा कुछ देने का साहस कैसे करती? नर्तकी थक कर चूर-चूर हो गयी। कुछ मिलते नहीं देख कर उसकी हिम्मत भी पस्त हो रही थी। गहन निराशा, हताशा और उदासी से भर कर उसने अपने चरण के तालों से अपने वादक से कहा—

५. विवेकानन्द जी के संग में··· ···पृ० ३६२—६३

इन कृपण दर्शकों के सम्मुख,
नाचती रही अब तक अभंग।
तन टूट रहा मन टूट रहा,
अब टूट रहा है अंग-अंग।
अब क्या नाचूँ ! कितना नाचूँ !
किसके सम्मुख नाचूँ ! बोलो !
वादक ! करने दो बन्द नृत्य का,
अब यह निष्फल राग रंग।

लेकिन वादक अधीर नहीं हुआ था। उसने अपने सितार की स्वर लहरी में नया अर्थ भरकर कहा—

क्या हुआ, न श्रम-फल मिला अगर !
मत हो निराश, मत कर मलाल,
अब थोड़ी-सी ही रात बची,
आने वाला है प्रात-काल।
कोई श्रम व्यर्थ नहीं जाता,
यह नियम प्रकृति का है अटूट
नर्तकी, नाचती रहो मुग्ध,
लय भंग न हो, टूटे न ताल।

कहा वादक ने—हे नर्तकी, तीन पहर रात तो बीत ही गयी। अब तो केवल एक पहर रात बाकी है। फिर तो सूर्योदय हो ही जायगा। इतनी थोड़ी देर के लिए अपना नृत्य बंद कर देना ठीक नहीं। हर मिहनत का कोई न कोई फल होता ही है। मनोनुकूल फल नहीं मिलने मात्र से इतनी जल्दी अधीर और निराश हो जाना ठीक नहीं।

वादक का यह स्वर सुनते ही नर्तकी के पाँव फिर पूरी उमंग से थिरक उठे और अंगों की बिजली फिर पल-पल कौंधने लगी।

और इसी समय लो, एक चमत्कार हो गया। उस दर्शक साधु ने अपना एक मात्र कम्बल तुरंत नर्तकी के ऊपर फेंक दिया। राजकुमार ने अपना दुशाला उतार फेंका नर्तकी के ऊपर और राजकुमारी ने झरोखे से अपने गले से हीरे का हार उतार फेंका नर्तकी की ओर। फिर तो अन्य दर्शकों ने भी दान की वर्षा कर दी। राजा यह सब देख हैरान हो गया। क्या हो गया लोगों को अचानक ! उसने साधु से अपना एकमात्र कम्बल फेंकने का कारण पूछा। साधु ने कहा—"जीवन भर के तप के बावजूद आत्म-साक्षात्कार नहीं होने से आज मैं पुनः गृहस्थी बसाने की सोच रहा था। लेकिन सितारवादक ने गुरु बनकर मुझे ज्ञान दे दिया। सारा जीवन तो तप में चला ही गया। थोड़े दिन और बचे हैं; फिर गृहस्थी क्या बसाना ? क्यों नहीं तप में ही जीवन होम कर दूँ ! इसी से मैंने कम्बल दे दिया।"

राजकुमार ने कहा—"मैं आज आपकी हत्या कर स्वयं राजा बन जाने की सोच रहा था। आप तो अपने जीवन में मुझे राजगद्दी देंगे नहीं। लेकिन इस वादक ने ज्ञान दे दिया। अब तो आप थोड़े ही दिन बचेंगे। फिर इतने के लिए मैं पितृहंता का दोष क्यों लूँ ? इसी से दुशाला फेंक दिया नर्तकी के ऊपर।"

राजकुमारी ने बताया—आज मैं घर से निकल भागने वाली थी। जानती हूँ, धन के लोभ के कारण आप मेरा विवाह करेंगे नहीं। मेरा यौवन व्यर्थ नष्ट हो रहा है। अतः स्वयं कहीं विवाह कर लेती। लेकिन वादक ने बताया कि अधीर नहीं होना चाहिए। आप भी तो बहुत दिनों तक बचने वाले हैं नहीं ! अतः थोड़ी और प्रतीक्षा क्यों न कर लूँ ! घर से निकल कर व्यर्थ कुलटा क्यों कहाऊँ ? यही सोचकर मैंने अपना निर्णय बदल दिया और प्रसन्न होकर हीरे का हार नर्तकी की ओर फेंक दिया।"

राजा को भी ज्ञान हो आया। उसने दूसरे ही दिन राजकुमारी का विवाह रचाया, राजकुमार को राजगद्दी दी, वादक और नर्तकी को पर्याप्त उपहार दिये और स्वयं वन को चला गया तपस्या करने।

तो मेरे मित्रो ! हमारी साधना का फल हमें अब तक नहीं मिला, इससे निराश होने की आवश्यकता नहीं। बल्कि नर्तकी की भाँति दुहरी उमंग से अपनी साधना में लगे रहना चाहिए। फल तो मिलेगा ही। ध्यान तो घटेगा ही। आत्म-साक्षात्कार का फूल तो खिलेगा ही। हम केवल लय भंग न करें, हम केवल अपना ताल टूटने नहीं दें।

भगवान् श्रीरामकृष्ण और स्वामी विवेकानन्द जी महाराज अधीरता से उबार कर हमें अपनी साधना की लय और ताल में बाँधे रखें जिससे हम आत्म साक्षात्कार कर शाश्वत शान्ति और चिरन्तन आनन्द में उतर सकें—यही उनसे हमारी आन्तरिक प्रार्थना है। जय श्री रामकृष्ण।

□ □

परमहंस श्रीरामकृष्णदेव एवं कर्मयोग

—श्री उमेश चन्द्र
अशोकनगर, राँची

परमहंस श्रीरामकृष्णदेव युगपुरुष थे। उन्होंने अपने जीवन-काल में सभी प्रमुख धर्मों का अनुशीलन किया एवं वे इस तथ्य पर पहुँचे कि सभी धर्म एवं सभी साधन पद्धतियाँ उस दिव्य चेतना की ओर लक्ष्य करती हैं जिसे हम ईश्वर या आदि शक्ति की संज्ञा देते हैं। मानव-जीवन का एकमात्र लक्ष्य है ऐसी दिव्य चेतना की अनुभूति जो मुक्ति का मार्ग प्रशस्त कर सके। सभी धर्मों ने एक स्वर से इस सत्य का अनुमोदन किया है एवं मानव-मात्र को अभीष्ट लक्ष्य की ओर ले चलने के लिए सन्मार्ग के अनुसरण की प्रेरणा दी है। परमहंस श्री रामकृष्णदेव ने मानव मात्र को सत्य के अनुसंधान की प्रेरणा दी एवं निर्भीकता पूर्वक अपने धर्म-मार्ग पर अग्रसर होने का निर्देश भी दिया। परमहंस श्रीरामकृष्णदेव ने मुक्ति के लिए कर्मयोग, ज्ञानयोग एवं भक्ति योग की अपनी-अपनी विशेषता बतलायी है। "ज्ञानी की राह भी राह है, ज्ञान-भक्ति की राह भी राह है, फिर भक्ति की राह एक राह है। ज्ञानयोग भी सत्य है, और भक्ति-पथ भी सत्य है, सभी रास्तों से ईश्वर के समीप जाया जा सकता है।"[1]

कर्म जीवन का पथ है। प्राणि-मात्र कर्म के नियम से बद्ध हैं। जन्म से लेकर मृत्यु तक सभी प्राणी कर्म के नियमों से नियन्त्रित होते हैं। कर्म का यह विधान सृष्टि की अरुण-बेला से प्रारम्भ हुआ है और जब तक सृष्टि का क्रम रहेगा कर्म की यह विधा सृजन के सभी स्वरूपों में दृष्टिगत होती रहेगी। कर्म की इस प्रकृतिजन्य वृत्ति का निरोध ही कर्म-योग है। कर्म प्रकृति का गुण है। श्रीमद्भगवद्गीता ने कर्म के स्वरूप का वर्णन इन शब्दों में किया है :—

"न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्।
कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः॥"[2] अध्याय ३/५

कोई भी व्यक्ति क्षणभर के लिए भी कर्म किये बिना नहीं रह सकता है। प्रकृति से उत्पन्न गुणों के कारण प्रत्येक व्यक्ति को विवश होकर कर्म करना पड़ता है।

शरीर का गुण कर्म है। परमहंस श्रीरामकृष्णदेव कहा करते थे :—"संसार कर्मक्षेत्र है। कर्म करते-करते ही ज्ञान होता है। गुरु ने कहा, इन कर्मों को करो और इन कर्मों को न करो। फिर वे निष्काम कर्म का उपदेश देते हैं। कर्म करते-करते मन का मैल धुल जाता है। अच्छे डाक्टर की चिकित्सा में रहने पर दवा खाते-खाते कैसा ही रोग क्यों न हो ठीक हो जाता है।"[3] कर्म प्राणी-मात्र का गुण धर्म है किन्तु कर्म ही बन्धन माना गया है। कर्म ही प्राणी-मात्र को संसार की विविध विषय-वासनाओं में पूर्णतया लिप्त कर देता है एवं बन्धन का कारण होता है। बन्धन का ही परिणाम है पुनर्जन्म एवं मुक्ति हेतु विविध योनियों की भटकन। कर्म मानव जीवन का बन्धन न हो यही गीता का निष्काम कर्म-योग है। कर्म मुक्ति-लाभ का साधन बने यही कर्म योग है। कर्म मुक्ति का साधन तभी बन सकता है जब वह निःस्वार्थ भावना से किया जाय। आसक्ति रहित कर्म बन्धन का हेतु नहीं रहता। भगवानकृष्ण ने भगवद्गीता में कहा है :—

"तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर।
असक्तो ह्याचरान्कर्म परमाप्नोति पुरुषः॥"

अध्याय ३/१९

इसलिए तू अनासक्त होकर सदा करने योग्य कर्म करता रह, क्योंकि अनासक्त रहकर कर्म करता हुआ मनुष्य सर्वोच्च परमात्मा को प्राप्त करता है। गीता ने निष्काम कर्म को इन्हीं तथ्यों के आधार पर मुक्ति का हेतु बतलाया है। "यदि हम कर्म के फल में अनासक्ति

1. श्रीरामकृष्ण वचनामृत— श्री "म" प्रथम भाग, पृ० ६८
2. श्रीमद्भगवद्गीता—डा० राधाकृष्णन्, पृ० १२६
3. श्रीरामकृष्ण वचनामृत—श्री "म", पृ० २३१

और परमात्मा के प्रति समर्पण की भावना विकसित कर लें तब हम कर्म करते रह सकते हैं। जो व्यक्ति इस भावना से कार्य करता है, वह नित्य-संन्यासी है।"[4]

सामान्य जीवन में हम देखते हैं कि विषय-वासनाओं के प्रति हमारी आसक्ति दूर नहीं हो पाती। हमारे सभी कर्म फल की इच्छा से ही अनुपूरित होते है। मन विषय-वासनाओं की आसक्ति का सहज ही त्याग नहीं करते। आसक्ति से क्लेश होता है। आसक्ति का उदय "मैं और मेरा" की भावना से होता है। स्वामी विवेकानन्द ने "मैं और मेरा" की भावना को समस्त क्लेश की जड़ बतलाया है। "अधिकार की भावना के साथ ही स्वार्थ आ जाता है और स्वार्थपरता से ही क्लेश उत्पन्न होता है। प्रत्येक स्वार्थपरक कार्य और विचार हमें किसी न किसी वस्तु से आसक्त कर देता है और हम तुरत उस वस्तु के दास बन जाते हैं। चित्त का प्रत्येक स्पन्दन, जिसमें "मैं और मेरे" की भावना रहती है, हमें उसी क्षण जंजीरों से जकड़ कर गुलाम बना देता है। हम जितना ही "मैं और मेरा कहते हैं, दासत्व का भाव हममें उतना ही बढ़ता जाता है और हममें क्लेश भी उतने बढ़ते जाते हैं।"[5] स्वार्थपरता ही आसक्ति का कारण बनती है। स्वार्थपरता का उन्मूलन ही अनासक्ति है।

स्वामी विवेकानन्द ने अनासक्ति के दो उपाय बतलाये हैं। प्रथम उपाय उन लोगों के लिए है जिन्हें ईश्वर की सत्ता में विश्वास नहीं एवं कर्म जिनके जीवन का आधार है। उन कर्मयोगियों के लिए अपनी ही इच्छाशक्ति, मनःशक्ति एवं विचार का अवलम्बन उन्हें निवृत्ति मार्ग की ओर ले जाने में सक्षम है। उनकी इच्छाशक्ति जितनी बलवती होगी, मन में अनासक्ति भाव जितना प्रबल होगा, उतनी ही तीव्रता से वे लक्ष्य प्राप्ति में सफल हो पायेंगे। जिन्हें ईश्वर की सत्ता में विश्वास है उनका मार्ग और भी सरल है। वे अपने सभी कर्मों को अपने प्रेमास्पद को समर्पित कर देते हैं। ईश्वर को समर्पित किया कोई भी कर्म आसक्तिजन्य नहीं हो सकता। परमहंस श्रीरामकृष्ण देव अपने गृही शिष्यों को ईश्वर में मन रखकर ही कर्म करने की शिक्षा दिया करते थे। श्रीरामकृष्णदेव के शब्दों में—

"सब काम करना चाहिए परन्तु मन ईश्वर में रखना चाहिए। माता-पिता, स्त्री-पुत्र आदि सब के रहते हुए सब की सेवा करनी चाहिए। परन्तु मन में इस ज्ञान को दृढ़ रखना चाहिए कि ये हमारे कोई नहीं हैं।

किसी धनी के घर की दासी उसके घर का कुल काम करती है, किन्तु उसका मन अपने गाँव के घर पर लगा रहता है। मालिक के लड़कों को वह अपने लड़के की तरह लालन-पालन करती है, उन्हें "मेरा मुन्ना", "मेरा राजा" कहती है, पर मन ही मन खूब जानती है कि वे मेरे कोई नहीं हैं।

कछुआ रहता तो पानी में है, पर उसका मन रहता है किनारे पर जहाँ उसके अण्डे रखे हैं। संसार का काम करो पर मन रखो ईश्वर में।

बिना भगवद्-भक्ति पाये यदि संसार में रहोगे तो दिनोदिन उलझनों में फँसते जाओगे और यहाँ तक फँस जाओगे कि फिर पिंड छुड़ाना कठिन होगा। रोग, शोक, तापादि से अधीर हो जाओगे। विषय-चिन्तन जितना ही करोगे, आसक्ति भी उतनी ही बढ़ेगी।"[6]

जिस व्यक्ति ने ईश्वर को अपने सभी कर्म समर्पित कर दिये हैं उसके फल का भोक्ता वह किस प्रकार रहा? उसने तो आन्तरिक रूप से सभी कर्मों का त्याग कर दिया है। वह व्यक्ति इन्द्रियों द्वारा सभी कार्य सम्पादित करते रहने के पश्चात् भी इन्द्रिय-जनित सुखः दुखः के बन्धन में नहीं बँधता। वह व्यक्ति प्रकृति या वस्तु रूपात्मक संसार के उपकरणों से बिल्कुल पृथक् है एवं उसे शुद्ध एवं मुक्त आत्मा के दर्शन प्राप्त हुए हैं। गीता भी इन तथ्यों की पुष्टि करती है :—

ब्रह्मण्याधाय कर्माणिसंग त्यक्त्वा करोति यः।
लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा॥"[7]
अध्याय ५/१०

4. श्रीमद्भगवद्गीता—डा० राधाकृष्णन्, पृ० १३१
5. कर्मयोग—स्वामी विवेकानन्द, पृष्ठ ११६
6. श्रीरामकृष्णवचनामृत—श्री"म"प्र० भाग, पृ० १२
7. भगवद्गीता—डा० राधाकृष्णन्, पृ० १६४

जो व्यक्ति आसक्ति को त्याग कर अपने कर्मों को ब्रह्म को समर्पित कर देता है ? उसे पाप उसी प्रकार स्पर्श नहीं करता जैसे कमल का पत्ता पानी में रहकर भी पानी से अलिप्त रहता है। गीता ने कर्मयोगियों के गुण एवं कर्म की ही विवेचना नहीं की है वरन् जनक एवं अन्य कर्मयोगियों के दृष्टान्त भी दिये है।

परमहंस श्रीरामकृष्णदेव ने ईश्वर लाभ हेतु मुख्य रूप से तीन कर्मों का निर्देश दिया हैं :—

(१) ईश्वर का नाम, जप, ध्यान, (२) कामिनी--कांचन का त्याग, (३) सत्-असत् का स्वविवेक से विचार।

(१) ईश्वर का नाम जप और ध्यान :- एक बार एक भक्त ने परमहंस श्रीरामकृष्णदेव से पूछा कि जबतक ईश्वर-लाभ न हो जाय तब तक क्या सब कर्म त्याग दें ? श्रीरामकृष्णदेव ने कहा :—"नहीं, कर्मों का त्याग क्यों करोगे ? ईश्वर का चिन्तन, उनका नामगुणगान नित्यकर्म यह सब करना पड़ेगा।"[8] परमहंस श्रीरामकृष्णदेव कहा करते थे कि कलियुग में शास्त्रयुक्त कर्म करना बड़ा कठिन है। अन्नगत प्राण है—जीवन अन्न पर ही निर्भर है। कलियुग में उपाय है भगवान का नामगुणगान और प्रार्थना। श्रीरामकृष्णदेव के शब्दों में :—"और सदा ही उनका नामगुणगान, कीर्तन और प्रार्थना करनी चाहिए। पुराने लोटे को रोज मांजना होगा, एक बार मांजने से क्या होगा ? और विवेक-वैराग्य और संसार अनित्य है, यह बुद्धि चाहिए।"[9] कर्मयोगियों के लिए श्रीरामकृष्ण ने संसार त्याग का कभी भी उपदेश नहीं दिया। वे कहा करते थे, सभी के लिए संसार त्याग ठीक नहीं। जिनके भोग का अन्त नहीं हुआ, उनसे संसार त्याग नहीं होता। रत्ती भर शराब से क्या मस्ती आती है। उन्होंने कर्मों का त्याग नहीं वरन् कर्मों के फल के त्याग पर बल दिया है। उन्होंने कर्मफल को ईश्वर को सुपुर्द कर ही कर्म मार्ग पर मुमुक्षुओं को अग्रसर होने की प्रेरणा दी है। गीता ने भी कर्मयोग के इन्हीं सिद्धान्तों को प्रतिपादित किया है।

"यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्॥
अध्याय ९/२७

अर्थात्, जो कुछ तू करता है, जो कुछ तू खाता है, जो कुछ तू यज्ञ करता है और जो कुछ तू दान देता है और जो कुछ तू तपस्या करता है, हे कुन्ती पुत्र अर्जुन, तू वह सब कुछ मुझे दिया जा रहा समझकर कर।

"दैनिक जीवन के सामान्य कर्मों का प्रवाह ईश्वर की उपासना में से होकर बहना चाहिए। ईश्वर का प्रेम जीवन की कठोरताओं से बच भागने का मार्ग नहीं है, अपितु यह सेवा के लिए आत्मार्पण है। कर्मयोग, जोकि विहित विधि-विधानों को करने के कर्त्तव्य से शुरू होता है, इस स्थिति में पहुंचकर समाप्त होता है कि सब कर्म जब अनासक्ति और समर्पण की भावना से किए जायें, तो वे पवित्र हो जाते हैं।"[10]

(२) सत्-असत् का स्वविवेक से विचार :- स्वविवेक ही सत्-असत् का निर्णायक है। स्वविवेक की जननी है सत्-कर्म। सत्-कर्म देश-काल एवं परिस्थिति पर निर्भर करता है। स्वार्थपरता से रहित सत्कर्म ही स्वविवेक को जन्म देता है। स्वामी विवेकानन्द ने निःस्वार्थ कर्म को हेतु बतलाया हैं। उन्हीं के शब्दों में :—

"केवल वही व्यक्ति सब की अपेक्षा उत्तमरूप से कार्य करता है, जो पूर्णतया निःस्वार्थ है; जिसे न तो धन की लालसा है, न कीर्त्ति की और न किसी अन्य वस्तु की ही। और मनुष्य जब ऐसा करने में समर्थ हो जायेगा, तो वह भी एक बुद्ध बन जायेगा। और उसके भीतर से ऐसी कार्यशक्ति प्रकट होगी, जो संसार की अवस्था को सम्पूर्ण रूप से परिवर्त्तित कर सकती है। वस्तुतः ऐसा ही व्यक्ति कर्मयोग के चरम आदर्श का उदाहरण है।"[11]

परमहंस श्रीरामकृष्णदेव ने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में विवेक की गरिमा गायी है। संसार-समुद्र में काम-क्रोधादि

8. श्रीरामकृष्ण वचनामृत—'म', प्रथम भाग, पृष्ठ० १४३
9. तथैव, पृष्ठ २९०
10. भगवद्गीता—डा० राधाकृष्ण; पृष्ठ २२५
11. कर्मयोग—स्वामी विवेकानन्द, पृष्ठ १४२

मगर हैं, किन्तु बदन में हल्दी मलकर पानी में उतरने पर मगर का डर नहीं रहता है। विवेक ही हल्दी है। सद्सत्-विचार का नाम विवेक है। ईश्वर ही सत् हैं, नित्य वस्तु हैं, बाकी सब असत्; अनित्य, दो दिन के लिए हैं—यह बोध ही विवेक है। विवेक ही कर्मयोगी के मुक्ति-पथ का सम्बल है।

(३) कामिनी-कंचन त्याग :—परमहंस श्रीरामकृष्णदेव ने कामिनी एवं कंचन को बन्धन का हेतु बतलाया है। वे कहा करते थे : "कामिनी-कांचन ही माया है। इसके भीतर अधिक दिन तक रहने से होश चला जाता है, ऐसा जान पड़ता हैं कि खूब मजे में हैं। मेहतर विष्ठा का भार ढोता है, ढोते-ढोते फिर घृणा नहीं होती।"[12]

कामिनी-कांचन से दासत्व का उदय होता है। परमहंस रामकृष्णदेव कहा करते थे :—

"कामिनी-कांचन जीव को बाँध लेते हैं। जीव की स्वाधीनता चली जाती है। कामिनी से ही कंचन की आवश्यकता होती है, जिसके लिए दूसरों की गुलामी की जाती है। फिर स्वाधीनता नहीं रहती, फिर तुम अपने मन का काम नहीं कर सकते। परमहंस श्रीरामकृष्णदेव ने कामिनी एवं कंचन को मुक्ति-पथ का विरोधी बतलाया है किन्तु सहधर्मिणी को ईश्वर-पथ का सहायक बतलाया है। वह स्वामी के ईश्वर-पथ में जाने में विशेष सहायता देती है। उन्होंने गृहस्थों को एक-दो बच्चे होने के बाद भाई-बहन की तरह रहकर आत्मनिग्रह द्वारा ईश्वर-प्रेम का सन्देश दिया है।

12. श्रीरामकृष्णवचनामृत—पृष्ठ १२०

चार संवास

संवास चार प्रकार का होता है—

(१) शव शव के साथ संवास करता है;
(२) शव देवी के साथ संवास करता है;
(३) देव शव के साथ संवास करता है;
(४) देव देवी के साथ संवास करता है।

१. जिस घर में पति हिंसक, चोर, दुराचारी, झूठा, शराबी, दुःशील, पापी, कृपण और कटुभाषी होता है, और उसकी पत्नी भी वैसी ही दुष्टा होती है, वहाँ शव शव के पास वास करता है।

२. जिस घर में पति हिंसक, चोर, दुराचारी, झूठा, शराबी, दुःशील, पापी, कृपण और कटुभाषी होता है, और उसकी पत्नी अहिंसक, अचौर, सदाचारिणी, सच्ची, नशा न करनेवाली, सुशीला, पुण्यवती, उदार और मधुरभाषिणी होती है, वहाँ शव देवी के साथ संवास करता है।

३. जिस घर में पति अहिंसक, अचौर, सदाचार, सच्चा, मद्यविरत, सुशील, पुण्यात्मा, उदार, और मधुर-भाषी होता है, और उसकी पत्नी हिंसक, चोर, दुराचारिणी, झूठी, नशा करनेवाली, दुःशीला, पापिनी, कंजूस और कटुभाषिणी होती है, वहाँ देव शव के साथ संवास करता है।

४. जिस घर में पति-पत्नी दोनों ही अहिंसक, अचौर सदाचाररत, नशा-विरत, सुशील, पुण्यात्मा, उदार और मधुभाषी होते हैं, वहाँ देव देवी के साथ संवास करता है।

(श्री वियोगी हरि द्वारा संग्रहित 'बुद्धवाणी' से साभार)

गौतम बुद्ध

—ब्रह्मचारी वरदा चैतन्य
रामकृष्ण मिशन बालकाश्रम, रहड़ा (प० बं०)

सकल कलुष तमस हरो, जय हो तव जय !
अमृत जल सिक्त करो, निखिल भुवनमय !
जय हो तव जय !
महाशान्ति, महाक्षेम !
महापुण्य, महाप्रेम !

ज्ञान-सूर्य उदय भाति ध्वस्त करो तिमिर-रात्रि
दुस्सह दुःस्वप्न रात्रि, करो तिरोहित भय,
जय हो तव जय !
महाशान्ति, महाक्षेम
महापुण्य, महाप्रेम !

मोह मलिन अति दुर्दिन, शंकित चित पान्थ
जटिल गहन पथ संकट, संशय उद्भ्रान्त ।
करुणामय त्याग शयन, दुर्गति भय करो क्षरण
दुःख-बन्ध-तरण मुक्ति का दो परिचय ।
जय हो, तव जय !
महाशान्ति, महाक्षेम
महापुण्य, महाप्रेम !

वैशाख की पूर्णिमा के एक पुण्य लग्न में भगवान बुद्ध ने जन्म लिया था—इस पृथ्वी पर, मानवों के बीच महा-मिलन की वाणी का प्रचार करने । उन्होंने जिस महा-शान्ति, महाप्रेम और महाक्षेम की वाणी का प्रचार किया था—महाकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने उनके उसी भावराज्य को भाषा देकर छन्दोबद्ध रूप में व्यक्त किया है अपनी उपर्युक्त कविता में ।

आज से ढाई हजार वर्ष पूर्व उस महामानव के आकाश की भाँति विशाल, व्यापक और उदार हृदय में प्रेम का जो स्वतः स्फूर्त स्फुरण घटित हुआ था उसे विलुप्त कर दिया था देश काल पात्र की सीमारेखाओं ने । उनके विश्वव्यापी प्रेम के प्रवाह ने हिंसा से उन्मत्त पृथ्वी पर नूतन इतिहास की सृष्टि की थी । वह इतिहास है मनुष्य के हृदय की विजय का इतिहास ।

किन्तु वह इतिहास रक्त के अक्षरों से नहीं लिखा गया । महाप्रतापी सम्राट् सिकन्दर की विश्वविजय का इतिहास हमलोगों ने पढ़ा है । पढ़ा है हमलोगों ने शक-हूण-पाठान और मुगलों की राज्य-विजय का उन्मत्त इतिहास । तीखी धारों वाली चमचमाती तलवारों के हिंस्र संचार और रणभेरियों के वज्र निर्घोष के द्वारा यह धरती उन्मत्त आक्रोश में काँप उठी है बार-बार, हजार बार ! पैशाचिक आनन्द से उन्मत्त, राज्य विजय की जय-पताका उसने आँसुओं और लोहू से सनी धरती पर लहरायी है । वह इतिहास आज भी मानव सभ्यता को लज्जित करता है । किन्तु भगवान बुद्ध ने केवल मात्र अहिंसा की नीति का अवलम्बन लेकर प्रेम की डोर में समग्र मानव जाति को बाँध लिया । उनके शान्ति के दूतगण गैरिक पताका उड़ाते हुए छा गये थे चारों दिशाओं में—पूरब, पश्चिम उत्तर, दक्षिण । हजार-हजार मुंडित मस्तक बौद्ध श्रमणों ने सारे संसार में द्वार-द्वार पर पहुँचा दिया था भारतवर्ष के धर्म, सभ्यता, और संस्कृति को । बुद्धदेव के उदात्त हृदय की उर्वर भूमि से प्रेम का जो बीज एक दिन अंकुरित हुआ था उसी ने काल-क्रम में विशाल वृक्ष का आकार धारण कर आश्रय दिया था—असंख्य अशान्त मनुष्य को । बुद्ध की अलौकिक वाणी में मानव मात्र ने पाया था अपने आत्यन्तिक दुःख की निवृत्ति

का उपाय। चीन, जापान, कोरिया, बर्मा, श्याम और पूर्व भारतीय द्वीपपुंजों में प्रभाव विस्तार किया था बुद्ध के प्रेम, मैत्री और करुणा की वाणी ने। हिंसा, स्वार्थ, कुटिलता और नीचता के आवरण को छिन्न कर आधी दुनिया के मनुष्यों का मनुष्यत्व जग उठा था उन दिनों बुद्ध के संजीवनी मंत्र के प्रभाव से। उन सब के कण्ठों से एक साथ ध्वनित हुआ था—'बुद्धं शरणं गच्छामि, धर्मं शरणं गच्छामि, संघं शरणम् गच्छामि'—मैं बुद्ध की शरण जाता हूँ, उनके धर्म की शरण ग्रहण करता हूँ, उनके संघ की शरण में आश्रय लेता हूँ। तब से भारत तीर्थ परिणत हो गया है विश्वतीर्थ में।

ऐसा नहीं है कि युग-युग में अवतार या प्रॉफेट आविर्भूत होकर केवल मात्र आध्यात्मिक जगत् में ही क्रांति ला देते हैं। उनके आविर्भाव के फलस्वरूप विप्लव घटित होता है विज्ञान में, साहित्य में, शिल्प में और संस्कृति में। सारनाथ में बुद्ध, जेरूजेलम में ईसा मसीह और दक्षिणेश्वर में श्रीरामकृष्ण ने जिस क्रान्ति की सूचना दी थी उसने प्रबल विस्फोट के रूप में भविष्य में मानव सभ्यता को उलट-पुलट कर रख दिया था। उनलोगों ने अपने प्रचण्ड मानसिक चिन्तन के द्वारा मानव सभ्यता को उन्नततर दिशा की ओर अग्रसर कर दिया था। उन सब के आविर्भाव से समग्र संसार के मनुष्यों में नव जागरण घटित होता है। समस्त विश्रृंखलताओं, अन्यायों और दुर्नीतियों के मूल को विनष्ट कर वे प्रवाहित करते हैं न्याय, नीति और धर्म का पवित्र स्रोत। उस संजीवनी जलधारा में जाकर संसार के निवासी नवीन प्राण तत्त्व ग्रहण करते हैं, जीवन की नव प्रेरणा जगती है—उनके हताशा-निराशा से भरे विक्षुब्ध हृदय में। ऐसे ही एक विश्रृंखल युग के अवसान के लिए ईसा के जन्म से प्रायः छः सौ वर्ष पूर्व जन्म लिया था भगवान तथागत बुद्ध ने।

भारतवर्ष का आकाश-वातास उन दिनों यज्ञों के धुओं से आच्छादित था। सौ-सौ मन घृत की आहुतियों से यज्ञ का होमानल प्रज्वलित होता था। वेदों की प्रधान शिक्षा—त्याग, सत्य आदि को भूलकर लोग वैदिक क्रियाकाण्ड के प्रति आसक्त हो गये थे। आचार-अनुष्ठान, मन्त्र-तन्त्र आदि के प्रति अत्यधिक अनुरक्ति के फलस्वरूप अति स्वाभाविक कारणों से ही पुरोहित वर्ग ने अपने समाज में अपने आधिपत्य का विस्तार कर लिया था। सुन्दर सुयोग पाकर इन पुरोहितों ने यह प्रचार किया कि योग-यज्ञ, आचार-अनुष्ठान आदि ही स्वर्ग पहुँचाने के श्रेष्ठत्तम मार्ग हैं, एवं पुरोहित ही उस स्वर्ग के द्वार के एक मात्र द्वारी हैं। अतएव, धर्मराज्य में प्रवेश करने के लिए उन्हें सन्तुष्ट करना आवश्यक कर्त्तव्य है। समाज की पृष्ठपोषकता और अतिरिक्त सम्मान के भाव ने पुरोहितों को धीरे-धीरे धर्म से भ्रष्ट कर दिया। उनके भीतर प्रवेश कर गये शठता, कुटिलता और नाना प्रकार के आनुषंगिक अनाचार। इस प्रकार बुद्धदेव का जन्म एक युगसन्धि के क्षणों में हुआ। वे आविर्भूत हुए तथाकथित हिन्दू धर्म की एक विद्रोही सन्तान के रूप में। ईश्वर-लाभ करने के क्रम में उन दिनों लोगों ने ईश्वर की ही अवहेलना करनी शुरू कर दी थी। इसी से स्वयं ईश्वर ने ही मानवपुत्र के रूप में अवतरित होकर मानव की मर्यादा को सुप्रतिष्ठित किया। उन्होंने यह शिक्षा दी कि सब से पहले निज प्रेमस्वरूप को प्राप्त कर हृदय को दुःख से उन्मुक्त करना होगा। उस प्रेमालिंगन से कोई वंचित नहीं होगा। मौन-मूक हंस, अथवा अबोध बकरी के बच्चे से लेकर मनष्य पर्यन्त सर्वत्र करना होगा उस उदार प्रेम का विस्तार और प्रसार। "इसी से आज हम भगवान बुद्ध को मानव मन के महासिंहासन के महायोग की वेदी पर यथा स्थान देखते हैं जिसमें अतीत काल का महत् प्रकाश वर्त्तमान का अतिक्रमण करता चलता है।"—रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने लिखा है कि अपने चित्त के विकार से अपने चरित्र की अपूर्णता के कारण पीड़ित मनुष्य आज भी उनके समीप जाकर कहता है—"बुद्ध की शरण की कामना करता हूँ। इस सुदूर काल में प्रसारित मानव चित्त की घनिष्ठ उपलब्धि के लिए ही उनका यथार्थ आविर्भाव हुआ।"

बुद्ध के लम्बे जीवन को स्थूल रूप से तीन भागों में बाँटा जाता है। जन्म से २९ वर्ष तक प्रथम जीवन; द्वितीय, गृह त्याग, छः वर्षों तक का तपस्यामय जीवन और बोधिलाभ; तृतीय ३५ वर्षों की उम्र से ८० वर्षों की उम्र तक के ४५ वर्षों का प्रचार का जीवन।

हिमालय की गोद में स्थित एक मनोरम राज्य—कपिलवस्तु। इस छोटे राज्य के राजा थे शुद्धोदन, और महारानी थीं मायावती। धार्मिक राजा, धार्मिक रानी। राज्य के प्रजावृन्द सुखी-सम्पन्न। वैशाख की पूर्णिमा के एक महापुण्य क्षण में बोधिसत्व ने जन्म लिया मायादेवी की गोद में। लोकहित के लिए जन्म लिया महामानव ने, भावी बुद्ध ने। सारे राज्य में मांगलिक शंखध्वनि बज उठी—महामानव के महाजन्म के स्वागत में। नाना प्रकार के अलौकिक दृश्यों का उद्घाटन हुआ। कपिलवस्तु नगर के समीप ही वास करते थे महर्षि असित। ज्ञान और प्रज्ञा से उन दिनों वे एक श्रेष्ठ मुनि के रूप में श्रद्धेय थे। एक परम आश्चर्यपूर्ण अनुभूति के फलस्वरूप हठात वे ध्यान से उठ गये। आँखों के मलते ही उन्होंने देखा प्रकृति का अलौकिक रूप-परिवर्त्तन। विभिन्न प्रकार के शुभ लक्षणों पर विचार करने से उन्हें बोध हुआ कि पृथ्वी पर तथागत का आविर्भाव हुआ है, जिनकी कथा वे गुरु परम्परा से इतने दिनों से सुनते आये थे। ध्यान के माध्यम से उन्होंने उनके अवस्थान की बात जान ली। तुरत चल पड़े महर्षि लुम्बिनी के उद्यान में भावी बुद्ध के जन्मस्थान की ओर। नवजात शिशु के शरीर के सारे लक्षणों को मिलाकर महर्षि असित निश्चित हो गये। आनन्द से भरे हुए रोमांचित शरीर से उन्होंने घोषणा की—विश्व की मानव जाति को मुक्ति का मार्ग दिखाने के लिए अवतरित हुए हैं स्वयं बोधिसत्व। राजा शुद्धोदन से उन्होंने कहा, आपका मनोरथ सिद्ध हुआ है; अतः अपने पुत्र का नाम रखिए—सिद्धार्थ।

पुत्र जन्म के सात दिनों के उपरान्त ही मायादेवी की मृत्यु हो गयी। सौतेली माँ महा प्रजापति गौतमी ने शिशु के पालन का भार ग्रहण किया उनके स्नेह की अमृत-धारा से चन्द्रमा की कला की भाँति सिद्धार्थ धीरे-धीरे बड़े हुए। बचपन के बीतते ही शुरू हुई उनकी शिक्षा। क्षत्रिय राजा के कुमार थे वे। थोड़े समय में ही सारी विद्याओं में पारंगत हो गये। वेदादि शास्त्र, धनुर्विद्या, शस्त्र विद्या, रथ संचालन आदि सारे विषयों में उन्होंने अपनी विलक्षण प्रतिभा का परिचय दिया। उनकी अलौकिक प्रतिभा उनके शिक्षा गुरुओं को मुग्ध कर देती थी।

क्रमशः सिद्धार्थ की किशोरावस्था समाप्त हुई। राज प्रासाद के ऐश्वर्य और भोग विलास के बीच भी उनका मन क्षण-क्षण किसी अज्ञातलोक के कोने में खो जाता था। कोलाहल और आनन्द से परिपूर्ण राजकीय अनुष्ठानों के बीच भी वे हठात् अनमने हो जाते थे। लोगों के बीच से अपने को अलग कर एकाकी होकर निर्जन में चले जाते। एकान्त में गंभीर रूप से चिन्तन के राज्य में डूब जाते। उस समय वे अपनी समस्त बाह्य चेतना लुप्त पाते। राजा शुद्धोदन अपने पुत्र की उन्मन अवस्था देखकर शंकित और चिन्तित हो जाते। ज्योतिषियों की भविष्य वाणी का स्मरण करते—'भविष्य में कुमार सिद्धार्थ एक महत् उद्देश्य की सिद्धि के लिए गृह-त्याग करेंगे अथवा गृह में रहने पर एक चक्रवर्ती राजा होंगे।' युवा पुत्र के विरक्त मन को भोग-विलास के प्रति आकृष्ट करने के लिए राजा सचेष्ट हुए। सचेष्ट हुए राजकुमार के मन में भोग-वासना उद्दीप्त करने के लिए। संसार के दुःख-कष्ट, अभाव-अभियोग, दरिद्रता के कुत्सित दृश्य—इन सब से कुमार को अलग कर रखा। उनके निवास के लिए विलासिता के साधनों से सज्जित महल का निर्माण किया। 'हे भिक्षुगण!" परवर्ती काल में भगवान् बुद्ध ने अपने पूर्व जीवन के विलासमय जीवन के सम्बन्ध में याद कर कहा था—"मेरा बचपन और यौवन यथोचित सुख-स्वाच्छन्दय के बीच व्यतीत हुआ। राजोद्यान में मेरे लिए अनेक पद्म-पुष्कर बनाये गये थे। किसी पोखर में लाल कमल, किसी में नील कमल और किसी में श्वेत कमल सैकड़ों की संख्या में खिले रहते थे।... ...शीत, ग्रीष्म और वर्षा ऋतु के लिए मेरे निमित्त तीन अलग-अलग महल थे। वर्षा ऋतु के चार महीनों में जिस महल में मैं रहता उसमें सुन्दरी परिवारिकाएँ मेरी सेवा करतीं। वर्षाकाल में उस महल से मैं नीचे नहीं उतरता।" किन्तु विलास के इतने सारे उपकरण और आमोद-प्रमोद के साधन भी सिद्धार्थ को सुखी नहीं कर पाये। अक्सर वे एकान्त में प्रगाढ़ ध्यान की तन्मयता से निश्चल हो जाते। बाद में राजा शुद्धोदन ने अंतिम मार्ग का अवलम्बन किया। तय किया उन्होंने कि कुमार को संसारी बनाना होगा। स्त्री-पुत्रों की माया की जटिल डोर स्वर्ण-शृंखला

की तरह कुमार को संसार में बाँध रखेगी—चिरकाल तक। शुभ लक्षणों से युक्त कन्या यशोधरा के साथ एक दिन सिद्धार्थ का पावन परिणय हो गया। लम्बे दस वर्षों का आदर्श गृहस्थ जीवन उन्होंने व्यतीत किया। पत्नी यशोधरा और पुत्र राहुल प्रबल प्रेम के धन थे।

लेकिन नहीं, एक दिन समय आ गया। कुमार का मन एक दिन 'संसार विदेश' से निज निकेतन' जाने के लिए उन्मुख हो उठा। वैराग्य का धर सजाने की वंशी ध्वनि एक दिन उन्होंने अपने अंतःकरण में सुनी। जिस वैराग्य की व्याकुलता से संसार प्रज्वलित अग्निकुंड और आत्मीय स्वजन माया की विभीषिका प्रतीत होने लगते हैं उसी वैराग्य ने सिद्धार्थ को राजमहल से राजपथ पर आने का आह्वान किया। राजभवन के कृत्रिम भोग विलास की दीवार लाँघकर सिद्धार्थ देखते हैं मनुष्य का प्रकृतरूप उसकी प्रकृत वेदना। पहचानते हैं इस आपात मनोमुग्धकर संसार को। देखते हैं हिलते-लटकते चमड़ोंवाले स्थविर, जरा-ग्रस्त बूढ़ों को। सुनते हैं कठिन व्याधि से आक्रान्त मरणा-सन्न प्राणियों के आर्तनाद और देखते हैं मृत्युपथ यात्री का नीरव शव।

बचपन से भोग-विलास में लालित-पालित कुमार ने आविष्कार किया एक सम्पूर्ण अपरिचित जगत का। उनके मन में तीक्ष्ण विचार बुद्धि का द्वन्द्व शुरू हुआ। क्या यही मनुष्य की चरम परिणति है? क्या मनुष्य चिर काल तक जरा-मृत्यु-हीन स्वस्थ जीवन का भोग नहीं कर पाता है? क्या एक दिन सबके यौवन का स्वास्थ्य, आनन्द और भोग की क्षमता लुप्त हो जायगी? क्या यही मनुष्य की अनि-वार्य चरम गति है??? तब सत्य क्या है? किसके द्वारा उस परम सत्य को उपलब्ध किया जा सकता है जिसे प्राप्त करने पर मनुष्य के दुःखों की आत्यन्तिक निवृत्ति होगी? यही महाप्रश्न जागृत हुआ सिद्धार्थ के व्याकुल हृदय में—जो प्रश्न जागृत होता रहा है युग युगान्तर से महामानवों के प्राणों में, जो प्रश्न जागृत होगा आगामी प्रजन्म के बुद्ध और ईसामसीह के प्राणों में।

बुद्ध के उसी महाभिनिष्क्रमण का दिन है इतिहास का एक अति गुरुत्वपूर्ण दिन। विश्वमानव के दुःखों के मूल का उत्पादन करने के लिए उनका यह राजकीय त्याग अभूतपूर्व है। स्वामी विवेकानन्द ने कहा है—"हमलोगों को है ही क्या कि हमलोग त्याग करेंगे? भिक्षुकों का और त्याग क्या? त्याग देखो बुद्ध का! समस्त राजैश्वर्य, प्रियतमा स्त्री, पुत्र, असंख्य गुणमुग्ध प्रजा, राजा का मुकुट सब का त्याग कर उन्होंने सत्य के संधान के लिए ग्रहण किया था भिक्षुक का गैरिक वेश।"

मुंडित मस्तक, हाथ में भिक्षा पात्र, शरीर पर गेरुआ चीवड़—इसी वेश में सिद्धार्थ आये वैशाली। वहाँ ग्रहण किया परम ज्ञानी आलोड़ मुनि का शिष्यत्व। उनके निकट सीखी ध्यान की प्रक्रिया और योग के सारे अंग। कुछ दिन व्यतीत किये आलोड़ मुनि के आश्रम में। किन्तु जिस परम वस्तु के संधान में वे लगे थे वह उन्होंने वहाँ नहीं पायी। उस स्थान का, अतएव, त्याग कर वे श्रावस्ती के मार्ग पर चले। परम श्रेय की प्राप्ति का मार्ग सदा से कंटकाकीर्ण रहा है। वह मार्ग फूलों से कभी सजा नहीं रहा। आँखों से जलधारा प्रवाहित किये बिना, बहुत सारे कष्ट सहे बिना, किसने इस परमपद को प्राप्त किया है? बुद्ध के मामले में भी इस नियम का व्यतिक्रम नहीं हुआ। संन्यास के क्षुरधार-पथ पर अत्यन्त सतर्कता के साथ परमनिष्ठा पूर्वक उन्होंने दीर्घकाल तक परिक्रमा की। कितनी रातों के व्यर्थ क्रन्दन, कितने दिनों के आशा—निराशा के द्वन्द्व, कितनी लोभ-लालसाओं की मोहिनी माया—इन सब का अतिक्रमण करने के बाद ही परम सत्य का संधान वे कर पाते हैं। वैशाली, श्रावस्ती और उरु-बिल्व की राहों पर ढूँढ़ते हैं वे योग्य गुरु को जो उन्हें अभीष्ट-लाभ करा सकें। श्रावस्ती में उन्होंने ग्रहण किया तपस्वी उद्रक का शिष्यत्व। कठोर साधना में नियुक्त हुए वे। किन्तु परितृप्त नहीं हो सके। फिर श्रावस्ती का परित्याग कर वे गये राजा बिम्बसार के राज्य में स्थित राजगृह। राज-गृह के निकट उरुबिल्व नामक ग्राम में उन्होंने ध्यान के लिए आसन जमाया। निरंजना नदी के तट पर स्निग्ध-सुकोमल अश्वत्थ वृक्ष के नीचे शुरू की अपनी कठोर कृच्छ साधना। उनके तेजोपुंजमय व्यक्तित्व और कठोर कृच्छ साधना से आकृष्ट होकर वप्र, भद्रिय, अश्वजित्, महानाम और कौण्डिण्य नामक पाँच भिक्षुओं ने उनकी शिष्यता

ग्रहण की। अपने बाद के जीवन में बुद्ध ने इस समय की अपनी कठोर तपस्या और कृच्छ साधना का उल्लेख करते हुए कहा था—"मैं श्मशान के मुर्दे की अस्थि का तकिया बनाकर शयन करता था। मैं अत्यल्प आहार करने लगा। दिन में मात्र एक चावल या मात्र एक बेर या केवल एक तिल ग्रहण करता था। धीरे-धीरे मेरा शरीर ऐसा सूख गया कि मैं जहां बैठता वहां ऊंट के पैर की तरह छाप पड़ जाती, दोनों आँखें कोटर में धँसकर गहरे कुएं के तल के जल की तरह प्रतीत होतीं, पेट का स्पर्श करने पर मेरुदण्ड में सट जाता, पैर पर हाथ देने से रोएं झड़ जाते। अतीत, वर्तमान या भविष्य में जैसा दुःख-वरण या कृच्छ साधन नहीं हो सकता वैसी दुष्कर साधना के द्वारा भी लोकातीत अतीन्द्रिय ज्ञान-दर्शन नहीं हुआ। इसी से मैंने चरम दुःख साधन का परित्याग कर दिया।"

चरम दुःख-साधन के पथ को त्यागकर बुद्ध ने ग्रहण किया मध्यम मार्ग। उन्होंने जान लिया कि 'शरीरमाद्यं खलु धर्म साधनम्।' इस शरीररूपी नाव की सहायता से ही दुस्तर तरंग संकुल संसार सागर को पार करना होगा। मध्यम मार्ग ग्रहण कर पुनः नियमित रूप से परिमित आहार सिद्धार्थ ग्रहण करने लगे।

मध्यम मार्ग का अवलम्बन कर बुद्ध ने फिर नूतन उद्यम से, नये बल से बलवान होकर शुरू की कठोर तपस्या। गृह-त्याग के बाद लम्बे छः वर्ष व्यतीत हो गये किन्तु अभी भी उन्होंने आशा का कोई आलोक नहीं पाया। निरंजना नदी के तट पर स्थित प्राचीन अश्वत्थ वृक्ष को साक्षी रख वज्रासन में बैठ हाथ से भूमि का स्पर्श कर कठिन प्रतिज्ञा की सिद्धार्थ ने—

—"इहासने शुष्यतु में शरीरं त्वगस्थि मांसं प्रलयं च यातुः
अप्राप्य बोधि बहुकल्प दुर्लभां नैवासनात् कायमतश्च-
लिष्यति।"

अर्थात् जब तक बोधि-लाभ नहीं कर लेता हूँ तब तक इस आसन का त्याग नहीं करूँगा, चाहे मेरे चर्म, अस्थि, मांस और शरीर सूख ही क्यों न जायें।' भगवान बुद्ध को अपने इस वज्र कठिन संकल्प से च्युत करने के लिए—आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक—विभिन्न विघ्नों की सृष्टि हुई। बौद्ध शास्त्रों में इन्हें 'मार' नाम से अभिहित किया गया है। इस मार के दल ने उन्हें ध्यान से विच्युत करने के लिए लोभहर्षक विभीषिकाओं, सुन्दरी अप्सराओं तथा भोग के विभिन्न उपकरणों की सृष्टि की। किन्तु सिद्धार्थ रंचमात्र विचलित नहीं हुए। वे विजयी हुए। वह भी वैशाख पूर्णिमा का ही एक दिन था। सिद्धार्थ ने महाबोधि-लाभ किया। महाबोधि लाभ कर सिद्धार्थ 'बुद्ध' हो गये। बुद्ध शब्द का क्या अर्थ है? बुद्ध ने कहा है—"बुद्ध शब्द का अर्थ है आकाश की तरह अनन्त ज्ञान-सम्पन्न। मैं, गौतम ने, वही अवस्था प्राप्त की है। तुम सब भी यदि इसके लिए प्राणपन से चेष्टा करो तो तुम सब भी उसे प्राप्त कर सकोगे।" श्रीरामकृष्ण देव ने कहा है—"बुद्ध का क्या अर्थ है, जानते हो? बोध स्वरूप का चिन्तन करते-करते वही होना—बोध स्वरूप होना।"

दीर्घकाल तक कठोर साधना करके बुद्ध ने निर्वाण प्राप्त किया था, दुःख के मूल कारणों को जाना था और उन्होंने दुःख के पार जाने के अचूक पथ का आविष्कार किया था। 'तण्हा' अर्थात् तृष्णा ही समस्त दुःखों का मूल कारण है। बुद्ध ने चार आर्य सत्यों का आविष्कार किया था—(१) दुःख है, (२) दुःख का कारण भी है, (3) दुःख का नाश है और (४) उस दुःख के नाश का उपाय भी है। दुःख नाश का उपाय है अष्टांग मार्ग का साधन। अष्टांग मार्ग है—सम्यक् दृष्टि, सम्यक् संकल्प, सम्यक् वाक् सम्यक् कर्मान्त, सम्यक् आजीव, सम्यक् व्यायाम, सम्यक् स्मृति और सम्यक् समाधि। परम आनन्द के साथ बुद्ध ने निर्वाण के आनन्द का उपभोग किया था। आत्मानन्द में विभोर आत्माराम बुद्ध सिंह की भाँति अकेले गहन वन में विचरण करने लगे। बाद में उनके मन में लोक-कल्याण करने की इच्छा उदित हुई। सोचा, इस बार अपने ध्यान से प्राप्त उपलब्धियों का, अपने आविष्कृत सत्य का प्रचार करूँगा साधारण जनों में। दुःख के ताप से तप्त मानव को दिखाऊँगा परम शान्ति का पथ, सुनाऊँगा मुक्ति की वाणी। किन्तु, दूसरे ही क्षण यह सोचकर निरुत्साहित हो गये कि साधारण मनुष्य क्या निर्वाण के जटिल तत्व ग्रहण कर सकेंगे? जिसे उन्होंने कठिन परिश्रम और दुष्कर तपस्या से प्राप्त किया है उसे क्या साधा-

रण मनुष्य उचित मर्यादा दे सकेंगे ? उनके कण्ठ से ध्वनित हुई निराशा की वाणी—

> किच्छेन ये अधिगतं हलं दानि पकासितुं
> राग दोस परेतेहि नायं धम्मो सुसम्बुधो
> पटिसोतगामिं निपुणं गम्भीरं दुद्दशं अणुं
> रागरत्ता न दक्खिन्ति तमोक् खन्धेन आवटा ।

युग युगान्तर की महासाधना से मैंने जिस धर्म को प्राप्त किया है, निर्वाण का अतिगम्भीर, अति सूक्ष्म जो तत्व है उसे अविद्या और राग द्वेष से आछन्न साधारण मनुष्य किस प्रकार हृदयंगम कर सकेंगे ? तब से बुद्ध स्वयं अपने आप में मग्न रहकर, आत्माराम होकर, निर्जन स्थल में निर्बिघ्न भाव से परमानन्द में अपना जीवन व्यतीत करने लगे। किन्तु दूसरे ही क्षण उनकी आँखों के सामने प्रस्तुत हो उठा अज्ञान के अन्धकार में निमज्जित असंख्य मनुष्यों का दृश्य। करुणा से विगलित हो उठे बुद्ध के महाप्राण। इन्हीं सब दुःख-तापों के निर्मम निष्पेषण से पीड़ित संतप्त हतभाग्य मनुष्य के कष्ट को दूर करने के लिए ही तो एक दिन उन्होंने राजा के वेश का परित्याग कर ग्रहण किया था त्याग का पथ। उनके साधन-भजन, कृच्छ साधन—ये सब तो विश्व के मानवों की मुक्ति के पथ की खोज करने के लिए ही हुए थे ! बुद्धि और हृदय के द्वन्द्व में उस दिन बुद्ध के हृदय की ही विजय हुई थी। समस्त द्विधा-द्वन्द्व का त्याग कर बुद्ध ने दृढ़ सिद्धान्त ग्रहण किया। हाँ, इन्हीं सब मनुष्यों के लिए ही उत्सर्ग करेंगे वे अपना तपस्यापूत जीवन। वह भी मानव इतिहास का एक परम पुण्य क्षण था। एक महापुण्य लग्न में मनुष्य की शान्ति के लिए घटित हुआ था बुद्ध का महानिष्क्रमण और एक माहेन्द्र क्षण में बुद्ध ने अपना स्वार्थ छोड़कर ग्रहण किया लोकहित का पथ।

आधुनिक युग में स्वामी विवेकानन्द के जीवन में ठीक इसी प्रकार एक घटना की पुनरावृत्ति होते हम देखते हैं। निर्विकल्प समाधि-लाभ कर युवक नरेन्द्रनाथ चाहते हैं दिन-रात उसी समाधि-सुख में निमग्न होकर रहना। किन्तु गुरु श्रीरामकृष्ण धिक्कारते हुए अपने प्रिय शिष्य की चेतना को उद्बुद्ध करते हुए कहते हैं—'छिः छिः ! तुम इतने बड़े आधार हो ! तुम्हारे मुँह से यह बात ? कहाँ तो तुम एक विशाल वटवृक्ष की भाँति होगे, तुम्हारी छाँह में आश्रय लेंगे शत-शत मनुष्य और कहाँ तुम वैसा नहीं कर केवल अपनी मुक्ति चाहते हो ! भावी विवेकानन्द ने उस दिन से ही ग्रहण किया था लोकहित का व्रत। अवतार पुरुष या प्रॉफेट तो लोक मंगल के लिए ही जन्म ग्रहण करते हैं। साधन-भजन, त्याग-तपस्या--सब तो उसी महत् उद्देश्य की सिद्धि के लिए होते हैं। मानव-के उसी माहेन्द्र क्षण में बुद्ध अपने भविष्य का संकल्प स्थिर कर बोल उठे—'अपारुता तेसं अमतस्स द्वारं।'—सबके लिए अमृत का द्वार खुल जाय।

शुरू हुआ बुद्ध का प्रचार-जीवन। लम्बे ४५ वर्षों तक—अपने महा परिनिर्वाण के अन्तिम दिन तक—भगवान बुद्ध अक्लान्त-अथक रूप से वैशाली, श्रावस्ती, राजगृह, सारनाथ नगरों के द्वार-द्वार की परिक्रमा करते हैं, अपनी अमृतमय वाणी जन-जन के निकट पहुँचा देने के लिए। 'बहुजन हिताय बहुजन सुखाय' अपने इस धर्म को समस्त विश्व में फैला देने के लिए बुद्ध ने प्रतिष्ठा की पृथ्वी के सर्वप्रथम धर्मसंघ की। बुद्ध के अनुगत हजार-हजार शिष्यों ने 'आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च'—अपने मोक्ष तथा जगत के हित के लिए—शरण ली तथागत बुद्ध की और ग्रहण किया भिक्षुक का गेरुआ वेश।

बुद्ध ने धर्म को नियोजित किया मानव-कल्याण के लिए। उन्होंने धर्म को जटिल दार्शनिक तत्वों की कठिन शृंखला से मुक्त कर उसे स्वच्छ, सार्वजनीन और कर्म-जीवन के लिए उपयोगी बना दिया। उस वैदिक धर्म की अवनति के काल में धर्म के प्रति उनकी वह नूतन दृष्टि भंगी एक युगान्तकारी पदक्षेप थी। बुद्ध में एक साथ ही बुद्धि और हृदय का चरम उत्कर्ष घटित हुआ था। स्वामी विवेकानन्द ने कहा है—"जो मस्तिष्क और हृदय वैदिक युग में नहीं देखा जाता है, वही बुद्ध में पाया जाता है। हृदयवत्ता का ऐसा दृष्टान्त विश्व के इतिहास में अदृष्ट-पूर्व है।"

विश्व इतिहास में मानव-मन के हृदय-पट पर आज भी भगवान बुद्ध की भावमूर्त्ति अम्लान और भास्वर रूप से प्रतिष्ठित है। आज भी उसी महाकाल की आँखों में झाँक कर हजार-हजार बौद्ध मठों में असंख्य अनगिन मनुष्य पूजा-निवेदन करते हैं उसी महामानव के लिए—परम आन्तरिकता के साथ, परम निष्ठापूर्वक। आज भी तथागत बुद्ध की वेदी पर निःशेष रूप से अपने को समर्पित कर हजार-हजार कण्ठों से उच्चरित होती है वही गम्भीर मन्द्रध्वनि—

> बुद्धं शरणम् गच्छामि .....
> धर्मं शरणम् गच्छामि .....
> संघं शरणम् गच्छामि .....

भगवान् बुद्ध की स्मृति में

—प्रो० नगेन्द्र कुमार
रीडर, हिन्दी विभाग, राजेन्द्र कॉलिज, छपरा

हिमालय ने बालारुण के शीतल प्रकाशयुत
अपने नन्हें पुत्र को दुलार से
कंधे पर उठा लिया।
अपनी उत्तुंगता में योगदान देता-सा
उसने संतोष की सांस ली
बढ़ते हुए वंश को देखकर,
अपनी शीतलता को प्रकाश से भरा देखकर।

शिव ने जब आँख खोली तीसरी
न झंझा था, न प्लावन था
हिमालय के कंधों पर नन्हा-सा बालक
पत्रस्थ शिशु मुकुन्द-सा
वरद स्मिति लिए, पीता था प्रलय को।
जिसके प्रकाश से विश्व का मोह-तम फटता था।
जिसने कल्याणकारी अपनी भुजाएँ दो
उत्तर और दक्षिण में फैलायीं
जिनकी स्निग्ध छाया में
एक ओर तिब्बत था, चीन था
दूसरी ओर भारत था, बर्मा था, लंका था।
शंकर के अधरों पर तरल हँसी दौड़ गयी।
प्रलयज वह बन्द हुआ।

बीते हजारों वर्ष
आयीं गयीं पीढ़ियाँ अनेक मानवता की
रंग परिवर्त्तित हुए, ढंग परिवर्त्तित हुए
जीवन के मूल्य भी कितने परिवर्त्तित हुए।
फिर भी हिमालय के पुत्र का प्रकाश वह
अमृत की किरणों से युक्त है।
उपकारी हाथों की शान्तिमयी छाया वह
बढ़ती हुई बेलि-सी
विश्व की डाल पर
फैल रही लपक-लपक।

विषयों का मीठा रस

१. नेत्र, कान, नासिका, जिह्वा और त्वचा, इन पाँचों इन्द्रियों के रूप, शब्द, गंध रस और स्पर्श से मनुष्य को जो सुख प्राप्त होता है उसी को मैं विषयों की जहरीली मिठाई कहता हूँ।

२. एक नौजवान आदमी व्यापार, खेती-पानी या नौकरी करके अपना निर्वाह करता है। अपने रोजगार-धंधे में उसे भारी-से-भारी कष्ट झेलना पड़ता है, तो भी विषय-भोग की वस्तु प्राप्त करने के लिए वह दिन-रात प्रयत्न किया करता है। इतना परिश्रम करने पर भी, यदि उसकी मनचाही चीज उसे नहीं मिलती, तो वह शोकाकुल होकर विचार-विमूढ़ बन जाता है।

३. यदि उसे अपने उद्योग में यश मिल गया और अपनी वांछित वस्तु प्राप्त हो गयी, तो वह दिन-रात इसी चिंता में पड़ा रहता है कि दुष्ट राजा या चोर उसे लूट न ले जायँ, आग या बाढ़ से वह नष्ट न हो जाय और उससे दुश्मनी मानने वाले बंधु-बांधव कहीं उसे नुकसान न पहुँचा बैठें।

४. इन विषयों के लिए ही एक राजा दूसरे राजा के साथ, क्षत्रिय क्षत्रिय के साथ, वैश्य वैश्य के साथ, माता पुत्र के साथ, पुत्र माता के साथ, बाप लड़के के साथ, बहन भाई के साथ और मित्र मित्र के साथ लड़ता है। इन विषयों के पीछे क्या-क्या कांड नहीं होते ?— गाली-गलौज होती है। हाथापाई होती है, हथियार चल जाते हैं और लोग मारे जाते हैं और नहीं तो मरणांतक दुःख तो भोगना ही पड़ता है।

५. इन विषयों की प्राप्ति के लिए ही लोग लड़ने पर आमादा हो जाते हैं और भीषण युद्धक्षेत्र में उतर पड़ते हैं। खूब घमासान युद्ध होता है और रणक्षेत्र में कितने ही मनुष्य अस्त्र-शस्त्रों से मारे जाते हैं, कितने ही आहत होते हैं। विषयों की इस जहरीली मिठाई के पीछे उन्हें मरणांतक दुःख भोगना पड़ता है।

६. इस विषय-भोग के लिए कितने ही मनुष्य चोरी करते हैं, डाका डालते हैं, राहगीरों पर टूट पड़ते हैं या दूसरों की स्त्रियों के साथ व्यभिचार करते हैं। विषय-भोग के शिकार उन चोरों, डाकुओं और व्यभिचारियों को पकड़ कर राजा अनेक प्रकार का दंड देता है। उनके हाथ-पैर तोड़ डालता है, उनके नाक-कान काट लेता है या उनका सिर ही उड़ा देता है।

७. इस विषाक्त विषय-भोग के लिए ही मनुष्य मन, वचन और काया से इस लोक में घोर-से-घोर दुराचार करता है और मृत्यु के बाद दुर्गति को प्राप्त होता है।

८, विषयों की आसक्ति छोड़ देने से ही मनुष्य विषय-विमुक्त हो सकता है।

९. जो ज्ञानवान मनुष्य विषय-माधुर्य, विषय-दोष और विषय-मुक्ति को यथार्थ रीति से जानता है, वह स्वयं विषयों का त्याग कर देता है, और दूसरों को भी विषयों के त्याग का उपदेश करता है।

१०. सौंदर्य की मिठाई क्या है ? किसी अत्यन्त रूपवती तरुणी को देखकर मन में जो मादक सुख उत्पन्न होता है, वही सौंदर्य की मिठाई है।

११. पर इस सौंदर्य की मिठाई में तो विकार है। वही सुन्दरी तरुणी जब वृद्धा हो जाती है, जब कमर झुक जाती है, बिना हाथ में लकड़ी लिये जब वह चल नहीं सकती, उसके सब अंग शिथिल पड़ जाते हैं, दाँत गिर जाते हैं, बाल सन-से सफेद हो जाते हैं, गर्दन हिलने लगती है, चेहरे पर झुर्रियाँ पड़ जाती हैं, तब उसका वह पहले का सरस सौंदर्य और ललित लावण्य विनष्ट हो जाता है। यह है सौंदर्य का दोष।

१२. सौंदर्य के विषय में आसक्ति न रखना ही सौंदर्य-जन्य भय से मुक्त होने का सच्चा मार्ग है। सौंदर्य की मिठाई क्या है ? उसमें क्या दोष है, और उस दोष से हम किस प्रकार मुक्त हो सकते हैं, इन सबको जो बुद्धिमान पुरुष यथार्थ रीति से समझता है, वह स्वयं तो रूप-रस के विषय से मुक्त हो ही जायगा, दूसरों को भी सौंदर्य-मुक्ति के मार्ग पर चलने की शिक्षा देगा। ●

श्री सारदा देवी

—स्वामी वेदान्तानन्द
सचिव, रामकृष्ण मिशन आश्रम, पटना

षोडश अध्याय

(और तीर्थदर्शन)

पहली बार पुरीधाम की यात्रा के मार्ग में सारदादेवी ने कोठार जाकर कुछ दिनों तक वास किया था, यह बात पहले ही कही गया है। सन् १९१० ई० (बंगला सन् १३१६ साल) के अगहन महीने में वे फिर कोठार गयीं और वहाँ दो महीनों तक रहीं। उनके वहाँ रहने के समय एक उल्लेखनीय घटना घटी थी।

उस समय कोठार के पोस्टमास्टर थे देवेन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय नामक एक सज्जन। वे ब्राह्मण के पुत्र थे। घटना चक्र से उन्होंने ईसाई धर्म ग्रहण कर लिया था। किन्तु बाद में अपने धर्म का परित्याग करने के कारण उनके मन में बड़ा अनुताप हुआ। वे हिन्दू धर्म में लौट आने के लिए व्याकुल हो उठे। आजकल शुद्धि संगठन इत्यादि अनेक प्रकार के आन्दोलन चलते हैं—अन्य धर्मावलम्बियों को हिन्दू धर्म में ले आने के लिए अनेक प्रतिष्ठान गढ़े गये हैं। इन दिनों किसी आदमी के लिए अन्य धर्म ग्रहण करने के बाद पुनः हिन्दू धर्म में लौट आना उतनी कठिन बात नहीं है। किन्तु उन दिनों तो समाज की अवस्था आजकल की तरह थी नहीं। देवेन बाबू द्वारा अपने मन की आकांक्षा सारदादेवी के संगियों के निकट व्यक्त करने पर उनलोगों ने सारी बातें उन्हें बतायीं। उनकी अनुमति पाकर देवेन बाबू ने प्रायश्चित कर फिर उपवीत और गायत्री मंत्र ग्रहण किया—सारदादेवी के एक ब्रह्मचारी साथी से। जनेऊ लेकर देवेन बाबू द्वारा सारदादेवी को प्रणाम करने पर उन्होंने देवेन बाबू को कर जोड़कर नमस्कार किया एवं दूसरे दिन उन्हें मंत्रदीक्षा दी।

माघ महीने के अन्तिम हिस्से में सारदादेवी ने आठ संगी-संगिनियों के साथ श्री श्रीरामेश्वर के दर्शन के उद्देश्य से यात्रा की। कोठार से भद्र (एक स्थान का नाम) आकर ट्रेन पकड़ी। रास्ते में चिल्का झील की शोभा देखकर वे विशेष आनन्दित हुईं। ट्रेन के मद्रास स्टेशन पहुँचने पर मद्रास के श्री रामकृष्ण मठ के अध्यक्ष श्री रामकृष्णानन्द ने उन सब की विशेष साज-बाज के साथ अभ्यर्थना की। वे सब के साथ प्रायः एक महीना मद्रास में थीं।

मद्रास में अनेक महिलाएँ उनके दर्शनार्थ आतीं। स्कूल की दल की दल छात्राएँ आतीं और उन्हें भजन एवं वाद्य सुनातीं। जो दर्शन करने आतीं प्रायः वे सब की सब थीं अंग्रेजी शिक्षिता—किन्तु बंगला भाषा कोई नहीं जानती थी। और वे (सारदादेवी) न अंग्रेजी जानती थीं, न तेलुगु आदि कोई दक्षिणी भाषा जानती थीं। स्वभावतः स्वच्छन्द रूप से वार्तालाप करना उनके लिए असम्भव था। फिर भी किसी एक अज्ञात आकर्षण से महिलाएँ उनके निकट आतीं तथा परितृप्त होकर लौटती थीं। मद्रास अंचल की महिलाओं के सम्बन्ध में एक दिन उन्होंने कहा था, "वहाँ की महिलाएँ लिखना-पढ़ना खूब जानती हैं। मुझे उन्होंने लेक्चर देने को कहा। मैंने कहा, मैं लेक्चर देना नहीं जानती हूँ। यदि गौरदासी आती तो देती।" मद्रास रहने के समय पुरुषों और स्त्रियों ने उनसे दीक्षा ग्रहण की। मद्रास में निवास करने के समय उन्होंने पुरातन दुर्ग, जलचर प्राणि निवास, मयलापुर मुहल्ले के शिव मन्दिर तथा ट्रिप्लिकेन मुहल्ले के पार्थसारथी के मन्दिर के दर्शन किये।

मद्रास से वे सब मदुरा शहर गयीं। यहाँ के मीनाक्षी देवी के मन्दिर की भाँति विशाल मन्दिर भारत में बहुत कम है। मदुरा शहर में एक दिन व्यतीत कर वे सब दूसरे दिन रात में रामेश्वर जा उपस्थित हुईं। पुराण में वर्णन है कि सीता का उद्धार कर लंका से लौटने के मार्ग में यहाँ श्रीरामचन्द्र ने अपने हाथों से बालू का शिवलिंग बनाकर पूजा की थी। समुद्र तट पर एक विस्तृत स्थान घेर कर यहाँ पत्थरों का मन्दिर बना हुआ है। और केवल एक ही मन्दिर तो नहीं है, उसके साथ ही नाट मन्दिर, गोपुरम् तथा और भी कितने ही घर-द्वार बने हैं। फिर उन सब के शिल्प का कलात्मक सौन्दर्य कितना चमत्कार-पूर्ण है! देखने से लालसा नहीं मिटती। रामेश्वर द्वीप रामनाद के राजा की जमींदारी के अधीन था। उस समय के राजा थे स्वामी विवेकानन्द के शिष्य। उन्होंने सारदा देवी और उनके संगियों के लिए पूजा तथा दर्शन आदि की जो हर प्रकार की सुव्यवस्था कर दी थी. वह बात कहने योग्य है।

मन्दिर के पुजारी थे दक्षिणी ब्राह्मण। उत्तर भारत के सभी शिव मन्दिरों में सब कोई प्रवेश कर पाते हैं एवं शिवलिंग का स्पर्श कर पूजा करते हैं। किन्तु रामेश्वर की व्यवस्था भिन्न तरह की है। वहाँ गर्भ मन्दिर में—जहाँ शिवलिंग स्थापित हैं—पुजारी ब्राह्मणों के घर की महिलाओं के प्रवेश करने पर भी, भारत के अन्य प्रदेशों के ब्राह्मण तक भी प्रवेश नहीं कर पाते। पुजारियों के हाथों में देकर ही पूजा करनी होती है। किन्तु रामनाद के राजा के विशेष आदेश से, मन्दिर के पुरोहितों ने सारदादेवी और उनके संगियों को, जो तीन दिनों तक रामेश्वर में थे, उन तीनों दिन, उन सब को गर्भ मन्दिर में प्रवेश कर अपने हाथों शिव की पूजा करने दी थी। रामेश्वर-दर्शन के सम्बन्ध में सारदादेवी ने कहा है, "रामनाद के राजा ने, मैं यहाँ आयी हूँ, यह सुनकर, अपने दीवान को मन्दिर का मणिकोठा (रत्नागार) खोलकर हमलोगों को दिखाने और यदि मैं कोई वस्तु पसन्द करूँ तो तुरत वह वस्तु मुझे उपहार में देने का आदेश दिया। मैं और क्या कहूँ! कुछ ठीक नहीं कर पाकर बोली, 'मुझे और क्या प्रयोजन है?' फिर दीवान ने दुःखी होकर कहा, 'अच्छा, राधू को यदि किसी वस्तु की आवश्यकता हो तो वह अभी ले ले।' राधू से मैंने कहा, 'देखो, यदि तुम्हें कोई जरूरत हो तो ले सकती हो।' इसके बाद जब हीरे-जवाहरों की वस्तुएँ देखती हूँ तब केवल मेरा कलेजा धक्-धक् करने लगता है। ठाकुर से आकुल होकर प्रार्थना करती हूँ 'ठाकुर, राधू को कोई कामना न जगे।' तब राधू ने कहा, 'यह सब क्या लूँगी? वह सब मुझे नहीं चाहिए। मेरी पेन्सिल खो गयी है, एक पेन्सिल खरीद दो।' मैंने यह बात सुनकर निःश्वास छोड़ा और बाहर आकर रास्ते की दूकान से दो पैसे की एक पेन्सिल खरीद दी।"

रामेश्वर में तीन दिन रहने के बाद सभी मद्रास होकर बंगलोर गये। वहाँ के श्रीरामकृष्ण आश्रम के अध्यक्ष स्वामी निर्मलानन्द के आग्रह से उन्हें वहाँ जाना पड़ा था। सर्वसाधारण के नहीं जानने पर भी उनके दर्शन के लिए खूब भीड़ हुई थी। इस सम्बन्ध में उन्होंने एक दिन कहा था, "अभी चारों ओर प्रचार हो गया है न, इसी से इतरने लोग! रास्ते में ट्रेन से उरतने पर पुष्प-वृष्टि होने लगी; इतना ऊँचा हो गया रास्ता।"

बंगलोर से फिर मद्रास होकर उन्होंने कलकत्ते की ओर यात्रा की। रास्ते में गोदावरी नदी में स्नान करने के लिए राजमहेन्द्री शहर में एक दिन विश्राम किया। वहाँ से पुरी आकर दो दिन निवास करने के बाद कलकत्ता लौटीं।

सारदादेवी तीसरी और अन्तिम बार काशी दर्शन को गयीं—सन् १९१३ ई० (बंगला सन् १३१९ साल) के कार्त्तिक महीने में। वहाँ श्रीरामकृष्ण अद्वैत आश्रम के निकट लक्ष्मी निवास नामक एक घर में उनके रहने की व्यवस्था हुई। इस यात्रा में उन्होंने प्रायः ढाई महीने तक काशीवास किया था। इसलिए धीरे-धीरे सभी प्रधान मन्दिरों एवं अन्यान्य दर्शनीय सभी स्थानों को देखने में उनको पर्याप्त समय मिला था। विश्वनाथ और अन्नपूर्णा के दर्शन के बाद वे तीसरे दिन श्रीरामकृष्ण मिशन सेवा-श्रम देखने गयी थीं। पालकी से घूम-घूमकर उन्होंने रोगियों के सभी घरों को देखा। वहाँ के घरों, सेवा की

व्यवस्था आदि देखकर खूब खुश हुईं। बातों-बातों में बोलीं, "यह स्थान इतना सुन्दर है कि काशी में रह जाने की मेरी इच्छा होती है।" बाद में एक दिन वे रामकृष्ण मिशन द्वारा परिचालित विधवाओं का आश्रम देखने गयीं। विधवाओं द्वारा उनको प्रणाम कर जाने के बाद उस आश्रम की परिचालिका के साथ उनकी इस प्रकार की बातचीत हुई।

"यह क्या री ? ये सब काशीवासी हैं, फिर ये सब प्रणाम क्यों करेंगी ?"

"करेंगी नहीं, माँ ? आपके अन्न से इनका प्रतिपालन होता है।"

"विश्वनाथ अन्नपूर्णा ही हैं, माँ। लगता है तुम इन सबकी देखभाल करती हो ?"

"हाँ, माँ जैसा करावें।"

"अहा, यह अच्छा है। इन अनाथा बूढ़ियों की सेवा करने से नारायण की सेवा होगी।"

काशी में अनेक महिलाएँ उनके समीप सहायता की प्रार्थी होकर आतीं और कहतीं, 'अपने बच्चों से हमलोगों की कुछ सहायता करने को आप कह दें।' इस प्रसंग में एक दिन उन्होंने कहा था, "मैं क्या कहूँगी, कहो ? वे सब जैसा समझेंगे वैसा ही तो करेंगे ? ..... वे लोग ही क्या करेंगे, कहो ? यही देखो न, अनाथा बूढ़ियों के लिए आश्रम बना रखा है, उन लोगों की कितनी सेवा-टहल होती है ? रोगियों के लिए अस्पताल है। फिर बाहर कितने लोगों की सहायता करते हैं उसका ठिकाना है क्या ? ये बच्चे कितनी खटान खटते हैं ! सब उनकी इच्छा है, माँ ! कहाँ से क्या कराते हैं यह वे ही जानते हैं।"

एक दिन दोपहर को सारदादेवी थोड़ा विश्राम कर रही थीं। इसी समय एक गीत की स्वर लहरी सुनाई पड़ी। कोई मधुर कंठ से अति करुण-स्वर में गा रही थी—

ओ, मेरी माँ ! कहाँ गयी ?

हुए बहुत दिन, तुम्हें न देखा, भरो गोद में, दयामयी।
ओ, माँ ! तू कैसी है जननी, संतति हित इतनी पाषाणी,
दर्शन दो माँ, अब न रुलाओ, कहती पुत्री, सुधामयी !

सारदादेवी हठात् उठ बैठीं एवं अपनी संगिनी को लेकर घर के बाहर बारामदे में आकर देखा—एक स्त्री यह गीत गा रही है और नेत्रों के अश्रु-जल से उसका हृदय-प्रदेश बहता जा रहा है। उनके वहाँ बैठते ही उससे उन्हें प्रणाम कर कहा—'माँ, मेरी अनेक दिनों की लालसा पूरी हुई। आज मुझे कैसा आनन्द मिल रहा है, कह नहीं पाती हूँ, माँ !' उन्होंने उसे आशीर्वाद देकर उसका परिचय पूछा।

"मैं आपकी भिखारिनी कन्या हूँ, माँ !"

"कहाँ रहती हो ?"

"अन्नपूर्णा के द्वार पर, नहीं तो दशाश्वमेध घाट पर स्थित बिहारी बाबा के मन्दिर के समीप बैठी रहती हूँ।"

"भिक्षा से तुम्हारा काम ठीक से चलता है तो ?"

"आपके आशीर्वाद से ठीक से चल जाता है। इन सब के लिए कोई इच्छा नहीं है। ..... जिससे थोड़ी भक्ति हो, यही चाहती हूँ, माँ !"

"वह तो होगी ही, माँ ! तुम ऐसे स्थान में रहती हो।..."

सारदादेवी ने उसे और एक गीत गाने कहा। उसने गाया—

ओ, माँ ! मुझ पर तनिक दया कर,
शिशु-सा मुझको बना धरो।
बड़ा नहीं होने दो,
शैशव की सुन्दरता नहीं हरो।
अकलुष सुन्दर सरल प्राण हों,
मान कुमान का न ज्ञान हो।
हिंसा निन्दा लाज घृणा कुछ—
जान न पाऊँ, यही करो।

गीत सुनकर उन्होंने कहा, "अहा कैसा चमत्कारपूर्ण गान है !"

स्त्री—'बहुत दिनों से आपके दर्शन की बड़ी लालसा थी। आप यहाँ हैं, यह सुनकर आने की इच्छा होती थी, किन्तु डर होता था, पीछे कहीं कोई कुछ बोल न दे।"

"कोई कुछ नहीं कहेगा। तुम्हारी जब इच्छा हो, आ जाया करो।"

काशी जाने पर सारदादेवी विशिष्ट साधुओं के दर्शनार्थ जातीं एवं उन सबके प्रति यथोचित सम्मान प्रदर्शित करतीं। अन्तिम बार में उन्होंने चमेलीपुरी का दर्शन किया—ये श्रीरामकृष्ण के गुरु तोतापुरी के समकालीन व्यक्ति थे। उनसे सारदादेवी की संगिनी गोलापमाँ ने जिज्ञासा की थी—"भोजन कौन देता है ?" उत्तर में उस वृद्ध साधु ने अत्यन्त तेज और विश्वास के साथ कहा, "एक दुर्गा माई देती है, और कौन देता ?" उत्तर सुनकर सारदादेवी खूब प्रसन्न हुई थीं एवं दूसरे दिन उनके लिए संतरे, सन्देश, (एक प्रकार की मिठाई) और एक कम्बल भेजा था। —(क्रमशः)

●

बुद्ध प्रसंग

जैसी दृष्टि, वैसी सृष्टि

प्रस्तुति—
प्रो० सुरेश कुमार प्रशांत

वर्षाकाल के पूर्व एक बौद्ध-भिक्षुक भिक्षाटन हेतु एक दिन किसी नगर में गया। उसके अद्भुद् लावण्य-युक्त शरीर तथा चमकते मुखमंडल को देखकर एक वेश्या उस भिक्षुक पर मोहित हो गयी। सर्वस्व त्याग किये हुए तथा आनन्द से नृत्य करते हुए उस भिक्षु से वेश्या ने निवेदन किया—"भिक्षुवर, इस वर्षाकाल तक आप मेरा आतिथ्य ग्रहण करें।"

भिक्षुक ने कहा—"देवि, मैं अपने गुरु से पूछ कर स्वीकारात्मक या अस्वीकारात्मक उत्तर दूंगा—अभी नहीं।"

दूसरे दिन भिक्षुओं की भरी सभा में उस भिक्षु ने भगवान बुद्ध से प्रश्न किया—"महाराज, एक वेश्या ने वर्षाकाल तक मेरा आतिथ्य-ग्रहण करने की इच्छा व्यक्त की है। मैं क्या करूँ ?" बुद्ध ने कहा—"अवश्य ही तुम उस वेश्या की इच्छा न ठुकराओ। तुम उसके अतिथि बनो।"

सारी सभा में भगवान बुद्ध के इस निर्णय पर खलबली मच गयी। उस वेश्या के यहाँ राजा तथा गण्यमान्य नागरिक माथा टेकते थे, इससे कई भिक्षुओं को ईर्ष्या भी हुई। कई भिक्षुओं को यह निर्णय पूर्णतया अनुचित लगा। उन्होंने बुद्ध का प्रतिवाद किया—'महाराज, भिक्षुक के भ्रष्ट होने की पूरी संभावना है।'

बुद्ध ने कहा—"मैं जिसे भेज रहा हूँ, उसपर मुझे पूर्ण विश्वास है। उसके लिए बाहर-भीतर, यहाँ-वहाँ सब समान हैं। जब एक वेश्या नहीं डरी तो मेरा संन्यासी क्यों डरेगा ? संन्यासी इतना कमजोर नहीं होता। वर्षाकाल की समाप्ति के बाद तुम पुनः मुझसे इस विषय में प्रश्न करना।"

दूसरे ही दिन से भिक्षुओं ने खबर लानी शुरू की। कोई कहता—'आज मैंने उसे वेश्या के साथ नृत्यमग्न देखा।' कोई कहता—'आज मैंने उसे उस वेश्या के आलिंगन में देखा।' कोई कहता—'आज मैंने अमुक रूप में...।' बुद्ध सब शांत भाव से सुनते रहे।

वर्षाकाल के बाद भिक्षुक लौटा। वेश्या भी साथ थी। वेश्या बुद्ध से बोली—"महाराज, मैं भिक्षुणी बनने आयी हूँ। भिक्षुक जीत गया, मैं हार गयी। मैंने इसे सारे निमंत्रण दिये। इसने सारे निमंत्रणों को स्वीकार भी किया। पर, जो कुछ हुआ, लगता है, इसके लिए कुछ नहीं हुआ। यह मात्र जैसे सारी घटनाओं का साक्षी बना रहा—द्रष्टा मात्र रहा। मैं भी वैसा ही आनन्द-लाभ और वैसा ही दृष्टि-लाभ चाहती हूँ।" भगवान बुद्ध ने भिक्षुओं की ओर देखकर कहा—"देखो भिक्षुओ, जिसका बाहर-भीतर मिट जाय, जिसका द्वैत मिट जाय, वह कहीं रहे, निर्लिप्त रहेगा। तुम कदापि अशुभ से न डरो, अशुभ तो कहीं है ही नहीं। संसार से भागो मत। संसार में रहकर संसार पर विजय प्राप्त करो।"

मौन तथा नतसिर भिक्षुओं को उस दिन एक नया मंत्र मिला—"जैसी दृष्टि, वैसी सृष्टि।"

हिन्दी विभाग
लोक महाविद्यालय, बनियापुर (सारण)

स्वामी अभेदानन्द के पत्र

(१)

रामकृष्ण वेदान्त आश्रम
दार्जीलिंग
२७ मई; १९३५

प्रिय र—,

बहुत दिनों के बाद तुम्हारा पत्र-अगरबत्ती की तीलियों सहित—मिला।

मन पर नियन्त्रण रहने से बुरे विचार नहीं उठते। अपने विचार क्रम पर सर्वदा निगरानी रखो। यदि कुविचार आते हैं तो विवेक की सहायता से उन्हें हटा दो। बुरे बिचार आदत से आते हैं। यदि निरोधक प्रकृति का विकास किया जाय तो बुरे विचारों की प्रकृति स्वयमेव चली जायेगी। बुरे विचार तुम्हारे मस्तिष्क में न आयें इसके लिए सर्वदा प्रार्थना करो। गीता, वचनामृत जैसी अच्छी पुस्तकें पढ़ा करो। मेरी नयी पुस्तक "आत्मज्ञान" (सेल्फ नॉलेज का बंगला अनुवाद) समिति द्वारा प्रकाशित हुई है। यदि यह पुस्तक पढ़ो तो बहुत-सी बातें समझ सकोगे।

बुरी संगति से बुरे विजारों को बल मिलता है। इसलिए तुम्हें कुसंगति त्यागकर अच्छी संगति लानी चाहिए। तुम सात्विक (हल्का एवं स्वास्थ्यवर्द्धक) भोजन लिया करो। मेरे आशीर्वाद तथा आश्रम के सभी सदस्यों की शुभकामनाएँ ग्रहण करो।

सर्वोत्कृष्ट कामनाओं के साथ,

तुम्हारा
अभेदानन्द

(२)

श्री रामकृष्ण वेदान्त समिति
४०, वीडर, स्ट्रीट, कलकत्ता
१२ मई, १९२५

प्रिय व—,

तुम्हारा पत्र मुझे मिल गया है। तुम्हारे पत्र के दूसरेके अंश का उत्तर यह है कि गुरु शिष्य केकल्याण का दायित्व लेता है। तथापि, यदि शिष्य गुरु के प्रति एकनिष्ठ श्रद्धा और दृढ़ विश्वास नहीं रखता और स्वेच्छाचारी हो जाता है तब गुरु कुछ नहीं कर सकता। शिष्य यदि गुरु के निर्देश के अनुरूप साधना एवं पूजा न करे तो उसका आध्यात्मिक विकास नहीं हो सकता!

यह सच है कि श्री ठाकुर सर्वोच्च सतह पर हैं। पर साधक को उस सतह तक उठना होगा। इसके लिए अथक परिश्रम करना होगा। प्रार्थना तभी होती है जब मन-वचन से एक साथ हम कहते हैं, "मेरे इष्ट के दर्शन देकर एकनिष्ठ श्रद्धा तथा दृढ़ विश्वास का वरदान मुझे दो।" पहले गुरु और फिर इष्ट का ध्यान करो। इस तरह प्रति-प्रातः और संध्या को तुम्हें जप, पूजा, मन्त्रोच्चारण इत्यादि करना चाहिए।

मेरे आशीर्वाद ग्रहण करना तथा सबों तक पहुँचा देना।

शुभकामनाओं के साथ,

तुम्हारा
अभेदानन्द

(३)

रामकृष्ण वेदान्त आश्रम
दार्जीलिंग
२२ अगस्त, १९३४

प्रिय र—,

तुम्हारा भेजा हुआ कपूर का डिब्बा मुझे मिला।

व्याकुलता मन की प्रकृति में निहित है। गीता में अर्जुन ने श्रीकृष्ण से जिज्ञासा की कि मन को कैसे स्थिर किया जा सकता है। श्रीकृष्ण ने उत्तर दिया, मन को स्थिर करना अत्यन्त कठिन है। अभ्यास और वैराग्य से ही उसे स्थिर किया जा सकता है।" जप और ध्यान के

क्रम में अन्य विचारों के मन में आते ही उन्हें हटाकर अपना ध्यान श्रीठाकुर पर लगा दो। इस तरह निरन्तर अभ्यास से तुम्हें मन की एकाग्रता आयेगी। सर्वदा इसके लिए प्रार्थना करो। और क्या लिख सकता हूँ! मेरा आशीष ग्रहण करो।

शुभकामनाओं के साथ,

तुम्हारा
अभेदानन्द

(४)

रामकृष्ण वेदान्त आश्रम
दार्जीलिंग
११ जून, १९३४

प्रिय र—,

पूजा के सम्बन्ध में तुम्हारी जिज्ञासा पूरी कर रहा हूँ। प्रतिदिन प्रातः दैनिक क्रिया से निवृत हो स्नान के उपरान्त शुद्ध मन से पूजा आरम्भ करनी चाहिए। पूजा के बाद भोजन करो। पूजा के पूर्व कुछ भी न खाना श्रेयष्कर है।

रात के भोजन के पहले, ठीक गोधूलि को, नहीं तो उसके एक-दो घण्टे के अन्दर, जप और ध्यान करो। सोने के पूर्व श्री श्री ठाकुर का चिन्तन करो और दिन-भर के अपने सारे कार्य-कलापों के प्रतिफल उन्हें समर्पित कर उनकी प्रार्थना करो। सर्वदा इसका ध्यान रखने की चेष्टा करो कि अपनी सारी क्रियाओं से तुम श्री श्री ठाकुर की ही अभ्यर्थना कर रहे हो। प्रातः सोकर उठने पर श्री श्री ठाकुर का स्मरण करो।

तुम्हारा शरीर स्वस्थ और चित्त शान्त एवं प्रफुल्ल है, जानकर प्रसन्नता हुई। अभी मैं पूर्व की तुलना में थोड़ा अच्छा हूँ। मेरा आशीष ग्रहण करो। शुभकामनाओं के साथ,

तुम्हारा
अभेदानन्द

(५)

श्रीरामकृष्ण वेदान्त आश्रम
दार्जीलिंग
२३ अक्तूबर, १९३२

प्रिय स—,

तुम्हारे पत्र से पूर्ण समाचार प्राप्त हुआ। याद रखो कि भावुक होने के बदले यदि अपने अच्छे बुरे कार्यों के परिणाम श्री श्री ठाकुर के चरण कमलों पर रखो तो कभी तुम्हें चिन्ता नहीं होगी। जप और ध्यान के लिए व्याकुल हो पलायन करने की आवश्यकता नहीं। श्री श्री ठाकुर कहा करते थे कि ध्यान मन में, वन में या निजी कमरे के कोने में करना चाहिए। नगर में रहकर तुम सहज ही मच्छरदानी में बैठे-बैठे रात को जप और ध्यान कर सकते हो। जब मैं कलकत्ते में अपने पैतृक आवास में था तब श्रीठाकुर के निर्देशानुसार रात में बिस्तर पर बैठ कर ध्यान किया करता था और उस समय मुझे बैकुण्ठ एवं नाना देवी-देवताओं के दर्शन होते थे।

जहाँ भी तुम व्याकुल मन से जाओगे तुम्हारा मन साथ रहेगा। तुम कर्म से क्यों डरते हो? कर्म से जबतक मन शुद्ध नहीं हो जाता, आत्मज्ञान नहीं हो सकता। विद्यालय का प्रबन्ध मैंने तुम्हें सौंपा है और तुम्हें सहस्रों बाधाओं के बीच भी उसे चलाने की चेष्टा करनी चाहिए। निश्चय ही इससे तुम्हारा मन शुद्ध होगा। मेरे आशीष ग्रहण करो।

तुम्हारा
अभेदानन्द

(६)

प्रिय प—,

तुम्हारा पत्र पाकर मुझे भी कलेश हुआ क्योंकि तुम्हें दुःखी देखकर मुझे कष्ट होता है। तुम्हें मैं अपने प्राणों की तरह ही प्यार करता हूँ। तुम यदि समिति को छोड़कर अन्यत्र चले जाओगे तो सारे काम कौन करेगा? तुम भावुक हो और निम्नतम विघ्न से हिम्मत हारकर भाग जाना चाहते हो—क्या यह उचित है? वृक्ष कितनी आँधियों के बीच खड़े रहते हैं। वृक्षों की तरह तुम्हें तितिक्षा (विपत्ति में धैर्य) का अभ्यास करना चाहिए और धैर्य बढ़ाना चाहिए। श्री श्रीठाकुर कहा करते थे कि बंगला वर्णमाला में 'श' की ध्वनि के लिए तीन अक्षर हैं। है "धैर्य रखो।" जिसका अर्थ धैर्य रखो और चित्त, चंचल न होने दो। "कष्ट या विपत्ति में समान रूप से शान्त रहो" इस उपदेश का पालन करो। वह जिससे किसी को चिन्ता नहीं होती और जिसे कोई चिन्तित नहीं कर सकता" इत्यादि। मेरे आशीष तथा यहाँ के सभी लोगों का प्रेम ग्रहण करो। शुभकामनाओं के साथ,

तुम्हारा
अभेदानन्द

—रामकृष्ण वेदान्त मठ, १९वीं राजा राजकृष्ण स्ट्रीट, कलकत्ता, द्वारा प्रकाशित "कम्प्लीट वर्क्स ऑव स्वामी अभेदानन्द", खण्ड-दस, से साभार अनूदित। ●

दिव्यायन

(कृषि विज्ञान केन्द्र, रामकृष्ण मिशन आश्रम, मोराबादी, राँची ८३४००८)

दिव्यायन (प्रभु की ओर का मार्ग) की स्थापना ग्रामीण युवकों के कृषि एवं संबद्ध विषयों के साथ ही आर्थिक, सामाजिक एवं आध्यात्मिक—इन तीन उद्देश्यों की उपलब्धि के निमित्त समाज के लिए प्रशिक्षणार्थ मार्च, १९६९ ई० में हुई। दिव्यायन-विचार मनुष्य के पुर्नस्थापन का एक सम्पूर्ण दृष्टिकोण है और इसका प्रयास जन-सामान्य के स्तर पर कार्य करना है।

इसकी शुरुआत ३ महीनों के लिए एक प्रायोगिक परियोजना के रूप में हुई। शीघ्र ही यह इतना लोकप्रिय हो गया कि इसे स्थायी कार्य का रूप दे दिया गया। २ एकड़ भूमि पर बने एक भवन को लेकर इसकी लघु शुरुआत हुई। अब यह एक सर्वाङ्गपूर्ण कृषि विषयक प्रशिक्षण संस्थान के रूप में विकसित हो गया है। इसमें निम्नलिखित उपकरण हैं—

(१) एक तिमंजिला छात्रावास जिसमें ६० प्रशिक्षणार्थी एक समय रह सकते हैं।

(२) वर्ग-भवन, भंडार, प्रशासनिक प्रखण्ड आदि।

(३) आधुनिक उपकरणों एवं संयंत्रों से युक्त एक कार्यशाला जिसमें कृषिक्षेत्र के संयंत्रों के संरक्षणार्थ प्रशिक्षण के लिए अलग खण्ड है।

(४) ५००० चिड़ियों से युक्त एक चिड़ियाखाना (पाउल्ट्री)।

(५) प्रोजेक्टरों, फिल्मों, स्लाइडों से युक्त एक चल श्रुति-दृश्य ईकाई।

(६) मुख्य केन्द्र में ९ एकड़ का एक प्रदर्शनी कृषिक्षेत्र तथा गेतालसुद और महेशपुर गाँवों में (केन्द्र से प्रायः ३५ कि० मि० दूर) लगभग १४२ एकड़ भूमि जिसमें ट्रैक्टर, पम्प, मोटर आदि आधुनिक उपकरण हैं। ग्रामीण किसानों के कौशलोन्मुख प्रशिक्षण में दिव्यायन की सफलता से प्रभावित होकर इन्डियन कौंसिल ऑफ एग्रीकल्चरल रिसर्च नयी दिल्ली ने इसे कृषि विज्ञान केन्द्र के रूप में फरबरी, १९७७ से मान्यता प्रदान की है।

इसके प्रशिक्षण कार्यक्रम से अबतक बिहार, उड़ीसा, मध्यप्रदेश, पश्चिम बंगाल, आसाम, त्रिपुरा, अरुणांचल प्रदेश और देश के अन्य भागों के ५६०२ किसान लाभान्वित हो चुके हैं। इनमें अधिकांश पिछड़ा वर्ग, अनुसूचित जाति, और अनुसूचित जन-जाति के किसान हैं।

दिव्यायन आपसे इसके कार्यक्रमों में भाग लेने की अपील करता है। इसके कार्यक्रम देश के सीमांत तथा पिछड़ा वर्ग के किसानों की स्थिति सुधारने के लिए प्रतिबद्ध हैं।

प्राङ्गण में प्रशिक्षण

दिव्यायन में ६ सप्ताहों का आवासीय पाठ्य पूर्णतः निःशुल्क दिया जाता है। प्रशिक्षणार्थी एक साथ भोजन करते हैं, एक साथ प्रार्थना करते हैं और एक साथ मिलकर कार्य करते हैं। सरल ग्रामीण युवक आसानी से समझ लेते हैं कि मनुष्य को विभाजित करने वाले घेरे कृत्रिम हैं। यह प्रशिक्षण मूल रूप से व्यावहारिक है जो प्राविधिक विशेषज्ञों के द्वारा प्रदान किया जाता है।

बहिर्प्राङ्गण-प्रशिक्षण

योग्य उम्मीदवारों को विभिन्न शाखाओं में ३ महीने या अधिक काल के प्रशिक्षण की व्यवस्था है।

प्रशिक्षण पूर्ण होने पर, प्रशिक्षणार्थी अपने-अपने गाँव लौटते हैं और नौकरी ढूँढ़ने की अपेक्षा विकसित पद्धति से कृषि कार्य करते हैं। दिव्यायन के प्राविधिक विशेषज्ञ अक्सर अपने पूर्व प्रशिक्षणार्थियों से मिलते हैं, बैंक ऋण, प्राविधिक जानकारी, सबसीडी आदि के द्वारा उनकी सहायता करते हैं तथा अपनी सहायता से गाँवों से भाई-चारा का संबंध बनाते हैं। राँची के ३० कि० मी० क्षेत्र के व्यासार्ध के गृहीत ९ गाँव नया स्वरूप ग्रहण करते जा रहे हैं।

दिव्यायन की उपलब्धियाँ—एक दृष्टि में (१९६९—८२)

१. ६ सप्ताह के पाठ्यक्रम में प्रशिक्षित कृषकों की संख्या	—२३५७
२. विशेष प्रशिक्षण में प्रशिक्षित कृषकों की संख्या	— ५७९
३. बहिर्प्राङ्गण में आयोजित कार्यक्रमों की संख्या	— ६४
४. बहिर्प्राङ्गण कार्यक्रम में प्रशिक्षित किसानों की संख्या	—१५३५
५. अनुसूचित, अनुसूचित जनजाति और पिछड़ा वर्ग के प्रशिक्षणार्थियों का प्रतिशत	— ७५%
६. श्रव्य-दृश्य कार्यक्रमों के आयोजन की संख्या	—१२८०
७. श्रव्य-दृश्य ईकाई द्वारा आच्छादित गाँवों की संख्या	— ५३३
८. दिव्यायन के पूर्व प्रशिक्षणार्थियों द्वारा आयोजित रात्रि-पाठशालाओं की संख्या	— २१
९. १ दिन के प्रशिक्षण कार्यक्रम में प्रशिक्षित किसानों की संख्या	— ९६६

नोट :—रामकृष्ण मिशन आश्रम को दिये गये दान आयकर से मुक्त हैं।

□□

रामकृष्ण—विवेकानन्द युवा सम्मेलन, पटना

रामकृष्ण विवेकानन्द युवा सम्मेयन का आयोजन गत १३ मार्च, १९८३ ई० को रामकृष्ण मिशन आश्रम, पटना के प्राङ्गण में बड़े जीवंत, ऊर्जास्वित और उत्साहपूर्ण रूप से किया गया। इस सम्मेलन का मुख्य उद्देश्य व्यक्तित्व के विकास और एक सुदृढ़ नींव पर मानव समाज के पुनर्निर्माण के सम्बन्ध में स्वामी विवेकानन्द के उपदेशों पर विश्वास रखने वाले पटना के युवाजनों को गतिमयता प्रदान करना था।

इस सम्मेलन में जाति या धर्म के बिना किसी भेद-भाव के १६ से ३५ वर्ष के उन युवक-युवतियों ने प्रतिनिधि के रूप के भाग लिया जो सत्य, प्रेम और न्याय के आधार पर भारत के पुनर्गठन में विश्वास रखते हैं एवं उस लक्ष्य की पूर्ति के लिए कार्य करने को इच्छुक हैं।

सम्मेलन का प्रथम सत्र प्रातः ९ बजे से आश्रम के ब्रह्मचारियों एवं छात्रों द्वारा प्रस्तुत वैदिक स्तुति तथा श्री वैद्य विकास बोस के मधुर गान के पुनीत वातावरण में प्रारम्भ हुआ जो १२ बजे दिन तक चलता रहा।

डॉ० विमलेश्वर डे के स्वागत भाषण के उपरान्त इस सम्मेलन के अध्यक्ष, रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम, लखनऊ के सचिव, श्रीमत स्वामी श्रीधरानन्दजी महाराज ने प्रायः १ घण्टे तक अपने मुख्य व्याख्यान में, वर्त्तमान भारत के पुनर्निर्माण में स्वामी विवेकानन्द के विचारों की उपादेयता, प्रयोजनीयता और सार्थकता पर विशद एवम् मनोहारी

रूप में प्रकाश डाला तथा आधुनिक युवजनों को स्वामीजी द्वारा निर्दिष्ट मार्ग पर चलकर अभिनव भारत के निर्माण में अपना महत्तम योगदान करने का शुभ आह्वान किया।

सम्मेलन के संचालक एवं मॉडरेटर डॉ० केदारनाथ लाभ ने सम्मेलन की सांदर्भिकता एवं उद्देश्य पर आलोक प्रदान करते हुए वक्ता—प्रतिनिधियों के अनुपालनार्थ आवश्यक निर्देश दिये।

रामकृष्ण मिशन आश्रम, राँची के स्वामी मेधानन्द ने निःस्वार्थ भाव से समाज की सेवा करने का आग्रह युवकों से किया।

तदुपरान्त प्रतिनिधियों ने निम्नोक्त पूर्व निर्धारित विषयों पर अपने विचार व्यक्त किये हैं—

विषय	वक्ता	भाषा
१. त्याग और सेवा	१. श्री रामेश्वर यादव	हिन्दी
	२. श्री अरविन्द कुमार सिन्हा	हिन्दी
	३. कुमारी मधु सहाय	अँग्रेजी
२. मनुष्य में निहित दैवत्व की अभिव्यक्ति और विश्व-मंगल का कार्य	१. श्री देवाशीष सरकार	अँग्रेजी
	२. श्री अमीर दास	हिन्दी
३. चरित्र और प्रगति—	१. श्री कुमोद कुमार श्रीवास्तव	हिन्दी
	२. श्री रामावतार मेहता	हिन्दी
४. समाज की निष्काम सेवा—	१. कुमारी वीथिका सरकार	हिन्दी
५. मानव सर्जक एवं चरित्र-दायिनी शिक्षा	१. श्री शुभाशीष सरकार	अँग्रेजी
	२. श्री आनन्द दास गुप्ता	अँग्रेजी
	३. कुमारी नीता प्रसाद	अँग्रेजी
	४. श्री संजय कुमार झा	हिन्दी
६. जन समुदाय की स्थिति के सुधार में युवजन का सहकार	१. श्री प्रभात रंजन	हिन्दी
	२. कुमार विवेकानन्द	हिन्दी
७. स्वामी विवेकानन्द का समाजवाद-	१. श्री ज्योतिर्विकास बोस	हिन्दी
	२. श्री नीरज कुमार	हिन्दी
	३. श्री राजीव रंजन	हिन्दी
	४. श्री विवेकानन्द दत्त	हिन्दी
८. भारतीय नारीत्व का आदर्श—	१. श्री सुरेश कुमार मिश्र	हिन्दी
	२. कुमारी मंजुश्री दास	हिन्दी
	३. कुमारी मंगला रानी	हिन्दी

रामकृष्ण मिशन आश्रम, राँची के स्वामी मेधानन्द जी ने युवकों से निःस्वार्थ भाव से समाज की सेवा करने का आग्रह किया।

द्वितीय सत्र अपराह्न २ बजे से ४·३० तक चला। इस सत्र में सम्मेलन के मॉडरेटर डॉ० केदारनाथ लाभ ने प्रतिनिधियों के व्याख्यानों से उभरे प्रश्नों के उत्तर दिये। सम्मेलन का उद्यापन भाषण श्रीमत स्वामी श्रीधरानन्दजी महाराज ने दिया जो काफी विचारोत्तेजक तक तर्क-संगत एवं मर्मस्पर्शी था। डॉ० विमलेश्वर डे के धन्यवाद ज्ञापन से सम्मेलन का समापन हुआ। आश्रम के सचिव स्वामी वेदान्तानन्दजी महराज दोनों सत्रों में उपस्थित थे।

शाम को स्वामी विवेकानन्द पर डाक्युमेन्टरी फिल्म प्रदर्शित हुई जो काफी प्रभावकारी थी।

श्री रामकृष्ण मिशन आश्रम पटना-800004

उत्सव-सूची

दूरभाष : ५०८१५ (पहला वैशाख, १५ अप्रैल, १९८३—१३ अप्रैल, १९८४)

नववर्ष	— शुक्रवार	१५ अप्रैल	१९८३
रामनवमी	— बृहस्पतिवार	२१ ,,	,,
श्री शंकराचार्य	— मंगलवार	१७ मई	,,
श्री बुद्धदेव	— बृहस्पतिवार	२६ ,,	,,
स्वामी रामकृष्णानन्द	— रविवार	७ अगस्त	,,
तुलसी जयन्ती	— सोमवार	१५ ,,	,,
स्वामी निरंजनानन्द	— मंगलवार	२३ ,,	,,
श्री कृष्णजन्माष्टमी	— बुधवार	३१ ,,	,,
स्वामी अद्वैतानन्द	— मंगलवार	६ सितम्बर	,,
स्वामी अभेदानन्द	— शनिवार	१ अक्टूबर	,,
स्वामी अखण्डानन्द	— बृहस्पतिवार	६ ,,	,,
श्री श्री दुर्गापूजा	— मंगलवार	११ ,,	,,
	से रविवार	१६ ,,	,, तक
श्री श्री काली पूजा	— शुक्रवार	४ नवम्बर	,,
स्वामी सुबोधानन्द	— बृहस्पतिवार	१७ ,,	,,
स्वामी विज्ञानन्द	—शनिवार	१९ नवम्बर	१९८३
स्वामी प्रेमानन्द	— बुधवार	१४ दिसम्बर	,,
क्रिसमस ईव	— शनिवार	२४ ,,	,,
श्री श्री सारदादेवी	— सोमवार	२६ ,,	,,
स्वामी शिवानन्द	— शुक्रवार	३० ,,	,,
स्वामी सारदानन्द	— सोमवार	९ जनवरी	१९८४
स्वामी तुरीयानन्द	— मंगलवार	१७ ,,	,,
स्वामी विवेकानन्द	— मंगलवार	२४ ,,	,,
स्वामी ब्रह्मानन्द	— शनिवार	४ फरवरी	,,
स्वामी त्रिगुणातीतानंद	- सोमवार	६ ,,	,,
श्री श्री सरस्वती पूजा	— मंगलवार	७ ,,	,,
स्वामी अद्भुतानन्द	—बृहस्पतिवार	१६ ,,	,,
शिवरात्रि	— बुधवार	२९ ,,	,,
श्री श्री रामकृष्णदेव	— रविवार	४ मार्च	,,
होली और चैतन्यदेव	— शनिवार	१७ ,,	,,
स्वामी योगानन्द	— मंगलवार	२० ,,	,,

एकादशी तिथि—संध्यारति के बाद श्री श्री रामनाम संकीर्त्तन

शनिवार	— २३ अप्रैल	१९८३
रविवार	— ८ मई	,,
रविवार	— २२ ,,	,,
मंगलवार	— ७ जून	,,
,,	— २१ ,,	,,
बृहस्पतिवार	— ७ जुलाई	,,
बुधवार	— २० ,,	,,
शुक्रवार	— ५ अगस्त	,,
,,	— १९ ,,	,,
शनिवार	— ३ सितम्बर	,,
,,	— १७ ,,	,,
सोमवार	— ३ अक्टूबर	,,
,,	— १७ ,,	
मंगलवार	— १ नवम्बर	१९८३
बुधवार	— १६ ,,	,,
,,	— ३० ,,	,,
शुक्रवार	— १६ दिसम्बर	,,
,,	— ३० ,,	,,
शनिवार	— १४ जनवरी	१९८४
,,	— २८ ,,	,,
सोमवार	— १३ फरवरी	,,
,,	— २७ ,,	,,
बुधवार	— १४ मार्च	,,
,,	— २८ ,,	,,
बृहस्पतिवार	— १२ अप्रैल	,,

पवित्र होना और दूसरों का हित करना—सभी उपासनाओं का यही सार है। जो दरिद्रों में, दुर्बलों में और रोगियों में शिव को देखता है, वही शिव की सच्ची पूजा करता है, और यदि वह केवल प्रतिमा में शिव को देखता है, तब उसकी पूजा मात्र प्रारंभिक है

— स्वामी विवेकानन्द

मंगल कामनाओं के साथ

मंगला मेटल्स

मेटल कन्टेनर के निर्माता

एवम् जेनरल आर्डर सप्लायर्स

ए २, पत्रकार नगर,

कंकड़बाग कॉलोनी,

पटना—२०

This is the gist of all worship—to be pure and to do good to others. He who sees Siva in the poor, in the weak, and in the diseased, really worships Siva; and if he sees Siva only in the image, his worship is but preliminary.

SWAMI VIVEKANAND.

WITH BEST COMPLIMENTS FROM :

MANGALA METAL

(Manufacturer of Metal Container and General Order Suppliers)

A 2, Patrakar Nagar,

Kankarbagh Colony,

PATNA—20